अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-40, अंक-02, 1-15 सितंबर, 2016

जय जगत!

विनोबा जयन्ती : 11 सितंबर

* काका कालेलकर
* जयप्रकाश नारायण
* रामवृक्ष बेनीपुरी

''मेरे मर जाने पर मेरी हड्डियाँ भी बोलेंगी कि 'धन और धरती बँट कर रहेगी।' यदि कोई यह मानता हो कि वह हमेशा के लिए धन और धरती का मालिक बना रह सकेगा, तो कहना होगा कि वह मूर्ख है और जमाने को पहचानता नहीं है। वह मार भी खायेगा, और हार भी खायेगा।''

—विनोबा

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 40, अंक : 02, 1-15 सितंबर, 2016

संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
कार्यकारी संपादक
अशोक मोती
मो. : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

इस अंक में...

1. विनोबा की विरासत : अहिंसक... 02
2. मातृभक्त विनोबा एक... 03
3. मातृमुखेन शिक्षणम् ... 05
4. गृह-लक्ष्मी अब समाज-लक्ष्मी... 07
5. जलते चिराग हैं विनोबा... 09
6. विनोबा का पुरुषार्थ भूदान... 10
7. विनोबा के साथ दो दिन... 13
8. संत विनोबा की अपूर्व समाधि-यात्रा... 17
9. कभी राष्ट्रीयकरण, कभी निजीकरण... 18
10. गतिविधियां एवं समाचार... 19
11. कविता : नरदेह... 20

संपादकीय

विनोबा की विरासत : अहिंसक क्रांति व आत्मबल

अहिंसक क्रांति का लक्ष्य सहयोगमूलक समाज का निर्माण करना है। सहयोग का मूल स्रोत प्रेम है। इसके विपरीत शासन का मूल स्रोत हिंसा व दण्ड-शक्ति है। सहयोगमूलक समाज प्रेम व अहिंसा से ही स्थापित होगा। अर्थात् राजसत्ता अहिंसक समाज की स्थापना का माध्यम नहीं बन सकता। राजसत्ता के निर्माण में, राजसत्ता ने हिंसा करने व दण्ड देने की सारी शक्ति अपने हाथ में ले ली। इस कारण ये लोकसत्ता विरोधी भी है।

लोकसत्ता व्यक्ति की अस्मिता के विस्तार का माध्यम बनती है। ग्राम समाज, किसी वृहत्तर समाज का विरोधी नहीं है। लोक की पहचान सीमित दायरे में जकड़ी हुई नहीं होती। पहचान के निरंतर विस्तार की सम्भावना के कारण ही ग्राम में सम्पूर्ण विश्व के दर्शन की सम्भावना प्रकट होती है। दूसरी ओर राजसत्ता अपने नागरिकों को केवल इसी पहचान पर तै कर देती है। राजसत्ता की सीमा के बाहर मित्र, शत्रु या निरपेक्ष भाव हो सकता है। लेकिन वे अलग पहचान होगी। हमारी पहचान के विस्तार की इकाई वे नहीं बन सकते या हम उनकी पहचान के विस्तार की इकाई नहीं बन सकते।

हिंसा दो प्रकार के पृथकीकरण लाती है। एक तो जिस व्यक्ति को या समूह/वर्ग को हिंसा का शिकार बनाया जाता है, वह सत्ता से, सम्पत्ति से व निर्णय लेने की स्वायत्तता से छांट दिया जाता है।

दूसरे हिंसा करने वाला तथा हिंसा का शिकार व्यक्ति—दोनों के अंतरात्मा की शक्ति, आत्मबल का क्षरण होता है। यानी पूरे समाज का आत्मबल धीरे-धीरे कम होता जाता है; और समाज अधिकाधिक हिंसा पर निर्भर होता जाता है।

चूंकि हिंसा की शक्ति से अन्तरात्मा की शक्ति का क्षरण होता है, इसलिए 'स्व' के विस्तार की शक्ति भी क्षीण हो जाती है। इसका एक अन्य परिणाम यह होता है कि हिंसा की सत्ता स्वीकारने वाले छद्म पहचान को आधार बनाते जाते हैं। छद्म पहचान अन्तरात्मा की शक्ति को नकारने व उसका क्षरण करने का माध्यम बनती जाती है। 'सर्व' में समाहित होने वाला 'स्व' खत्म होता जाता है तथा सीमाबद्ध-स्वार्थबद्ध 'मैं' उसका स्थान लेता जाता है। विकल्प का मतलब होगा—अन्तरात्मा केन्द्रित पहचान को खड़ा करना। अन्तरात्मा केन्द्रित पहचान, हर झूठी पहचान को काट कर गिरा देगी।

विनोबा ने इसी पहचान को खड़ा करने का काम अपने सभी अभियानों के केन्द्र में रखा। शायद इसीलिए उन्होंने अपने अभियान को यज्ञ का नाम दिया। अहिंसक क्रांति की जो रूपरेखा उन्होंने प्रस्तुत की उसकी बुनियाद में लोक का आत्मबल था तथा उस आत्मबल के अधिष्ठान पर लोकसत्ता का निर्माण करना था। लोकसत्ता का सगुण रूप ग्रामस्वराज्य की परिकल्पना में था। इस प्रकार जहां पूंजीवादी आधुनिक समाज व्यक्ति की यांत्रिकीकरण की प्रक्रिया को मजबूत करने वाला है; विनोबा द्वारा प्रस्तुत विकल्प में व्यक्ति अपने अन्तरात्मा को शक्ति से परिपूर्ण करते हुए, लोक-समुदाय का निर्माण करता जायेगा। इसमें न तो श्रम का शोषण सम्भव होगा न प्रकृति का दोहन। अवास्तविक पहचान की सम्भावना को जड़ से नकारने के कारण, झूठी पहचानों के आधार पर समाज में द्वन्द्व भी खड़े नहीं होंगे।

विनोबा, गांधीजी को मानने वाले ही नहीं थे, बल्कि उस विरासत को आगे बढ़ाने वाले थे। उन्होंने नये प्रयोग कर गांधी की परम्परा में कुछ जोड़ा। विनोबा की विरासत को आगे बढ़ाने का मतलब होगा कि गांधी-विनोबा की परम्परा में कुछ जोड़ना, नये संदर्भों में उसे अधिक ऊर्जावान बनाना।

बिमल कुमार

स्मरणांजलि
11 सितंबर : विनोबा-जयंती

मातृभक्त विनोबा एक अद्‌भुत संत

❑ अशोक मोती

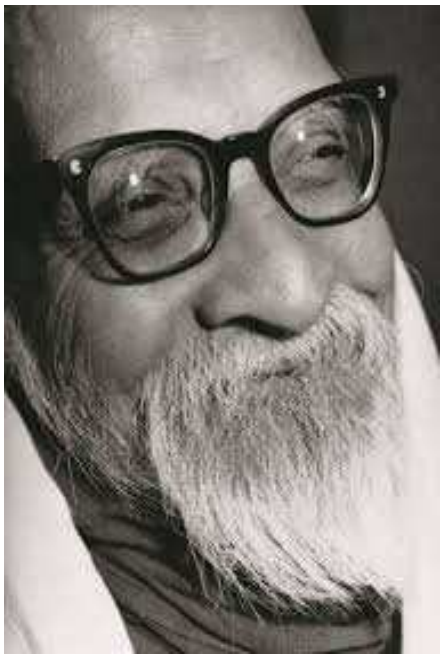

'वेणू' का 'वीनू' बना
अद्‌भुत संत, फकीर।
जो लकीर का फकीर नहीं था
जैसा संत कबीर।।

मां 'वेणू' का दुलारा 'वीनू' कोई साधारण बालक नहीं था। गणेशजी की तरह वीनू का जन्म 11 सितंबर 1885 चतुर्थी को होने के कारण उसका नाम 'विनायक' पड़ा और लोग घर में उसे 'वीनू' के नाम से पुकारने लगे। मां के लिए वीनू प्राणों से प्यारा तो वीनू के लिए वेणू आत्मा थी। पूत के पांव तो पलने में ही दीखने लगे थे। 6-7 वर्ष की उम्र में ही पदयात्री बन बैठे, तभी तो वीनू यानी गांधी के विनोबा ने पूरे देश में भूदान के लिए पदयात्रा की, जैसी विश्व में आजतक किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं की।

एक बार वेणू बिना 'वीनू' को लिये बैलगाड़ी से नरहर पंतजी के साथ गागोदा से सात किलोमीटर दूर पेण चली गयी थीं। मां को घर में नहीं देख वीनू रोने लगा और किसी को कुछ बताये बिना रोते-रोते पैदल पेण की ओर चलने लगा। पेण का रास्ता बहुत कंटीला था, फिर भी वह नहीं माना, नंगे पैर बेतहाशा चलते पेण पहुंच गया। हर घर में झांककर अपनी मां को ढूंढ़ने लगा। एक घर में उसकी मां दिख गयीं। वीनू आनंदित हो उठा। मां को जोर से पुकारता 'मां मैं आ गया' गले से लिपट गया। मां और बेटे दोनों के आंसू झर-झर बहते रहे।

मां बोली—इतनी दूर वीनू तुझे यहां कौन लाया? वीनू बोला—कोई नहीं मां, मैं खुद पैदल आ गया हूं। मां के आंसू और भी जैसे बरस पड़े। बोली—तू जंगल पार...रास्ता भी तो भूल सकता था और जोर से गले लगा लिया। इस तरह वीनू सात वर्ष की उम्र में 7 किलोमीटर पैदल चलने वाला बालक पदयात्री बना और पूत के पांव तो पलने में ही जैसे दिख पड़े। धर्म और ममता की उपासक ममतामयी मां वेणू की देखरेख व सीख से वीनू आगे चलकर बाबा, संत, महर्षि और जयजगत के प्रणेता 'विश्वऋषि' विनोबा कहलाये। महान् ज्ञानी, परोपकारी और सेवाभावी मां की सीख— *'जो दूसरों के लिए चंदन-सा घिस-घिसकर अपने जीवन को सार्थक बनाता है, उसी का जीवन सुगंधित बनता है'* सदा याद रखी। चंदन की तरह अपने जीवन को विश्व मानवता के लिए अर्पित कर दिया।

विनायक बहुत कुशाग्र बुद्धि का बालक था और बड़ा होशियार भी था। किताब का तो वह बचपन से ही कीड़ा था। आठ साल की उम्र में उसने पूरी ज्ञानेश्वरी पढ़ ली थी। 40 हजार से अधिक श्लोक उन्हें कंठस्थ हो गये थे। संत तुकाराम तथा स्वामी रामदास का बड़ा प्रभाव था। 10 साल की उम्र में यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तो आजीवन ब्रह्मचर्य का संकल्प ले लिया। मां से कहा—मां मैं समर्थ की तरह घर छोड़कर जाना चाहता हूं। मुझे आध्यात्मिक कार्य करना पसंद है। इस ब्रह्मचर्य पालन में उनकी मां का बड़ा योगदान था। विनोबा के अखंड ब्रह्मचर्य व्रत पालन से उनके और दो भाई बालकोवा तथा शिवाजी ने भी जीवन भर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया और विनोबा ने तो देश ही नहीं पूरी दुनिया का अभिप्रणयन किया। विनायक ने मन में ठान लिया कि मुझे तो ब्रह्म की खोज करनी है। सोचते-सोचते उसने तय भी कर लिया कि उसे काशी चलना चाहिए। पहले संस्कृत पढ़ लूं फिर हिमालय की गोद में तपस्या के लिए जाऊं।

ब्रह्म-जिज्ञासा से वीनू एक दिन सचमुच काशी पहुंच गया। दुर्गाघाट पर निवास कर संस्कृत और व्याकरण का अध्ययन किया। बाद में क्रांतिकारी तात्याटोपे जी की बहन के घर में अध्ययन करने लगा और कुछ ही महीनों में अपना अध्ययन पूरा कर लिया। इसी दौरान वीनू की मुलाकात स्वतंत्रता आंदोलन के कई क्रांतिकारियों से हुई और विचार-विनिमय भी हुआ। कहां संन्यासी की राह और कहां क्रांतिकारी की राह! वैसे दोनों ही भाव उन्हें स्पर्श नहीं कर पा रहे थे। उसे तो सदा मां की बात ही याद आती—तुम्हें तो लोगों की सेवा के लिए घूमना है।

एक दिन की बात है, विनायक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ग्रंथालय गये। उनकी नजर गांधी के एक भाषण पर पड़ी, जो उन्होंने 4 फरवरी 1916 को विश्वविद्यालय के एक समारोह में दिया था, जिसमें देश के कई राजे-महाराजे तथा ब्रिटिश शासन के वायसराय भी उपस्थित थे— *"सिर से पैरों तक स्वर्णालंकारों से लदे और हीरे-रत्नों से सजे लक्ष्मी पुत्रो, जरा अपने सारे गहने उतारकर इस देश के दरिद्रनारायण की ओर देखो। जब तक इस देश से ब्रिटिश सत्ता*

नहीं निकलती तब तक इस देश का उद्धार नहीं हो सकता। मैं अपना सर्वस्व अपनी मातृभूमि के लिए समर्पित करने को तैयार हूं।'' गांधी ने यह भी कहा था कि ''यदि हमारा भगवान पर पूरा भरोसा है, तो हमें किसी से डरने की जरूरत नहीं—न राजा-महाराजाओं से, न वायसराय से न खुफिया पुलिस और न पंचम जार्ज से।'' गांधी के इस भाषण का वीनू पर गहरा असर पड़ा। सोचने लगा—कैसा साहसी है, जो ब्रिटिश वायसराय के सामने उसकी ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देने का साहस किया? सत्याग्रह आंदोलन के लिए आश्रम की स्थापना करने वाला और कानूनी ढंग से ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ अहिंसक संघर्ष करने वाला यह कैसा अनूठा व अद्‌भुत व्यक्ति है? हिंसा पर इसका कोई भरोसा नहीं और डर तो उसे छू नहीं गया है...और भगवान पर इतनी अटल श्रद्धा! इसे आध्यात्मिक समझूं या क्रांतिकारी? यह संन्यासी है या सैनिक? यह बैरिस्टर है या कोई जादूगर? एक बार इससे तो जरूर मिलूंगा। वीनू ने गांधी को संदेश भरा एक पत्र भेज दिया। कुछ समय बाद गांधी का उत्तर आया—''आपके प्रश्न अधिक मूलभूत स्वरूप के हैं, उनकी चर्चा हम पत्र के माध्यम से नहीं, प्रत्यक्ष मिलकर ही करेंगे। आप प्रत्यक्ष मिलने आइए।'' 7 जून 1916 को विनायक अहमदाबाद के उनके आश्रम 'कोचरब आश्रम' पहली बार आये और गांधी से मिलकर उनके जीवन को तो एक नई दिशा ही मिल गयी—*''जब मैं बापूजी के पास पहुंचा तो मुझे हिमालय-सी 'शांति' और बंगाल की 'क्रांति', दोनों का अद्‌भुत संगम देखने को मिला। मुझे मेरी जिन्दगी का श्रेयस और प्रेयस दोनों प्राप्त हुए।जैसे मुझे जिन्दगी की ध्येयपूर्ति के हेतु मानो समाधि ही मिल गयी हो।''* अब वीनू और विनायक का नाम गांधी ने विनोबा रख दिया और उसे एकदम ऊंचे पद पर विराजमान कर दिया—'गांधी के स्वतंत्रता आंदोलन का पहला सत्याग्रही।' युग प्रवर्तक यात्रा का प्रारम्भ इसी आश्रम प्रवेश से प्रारंभ हुआ, जो अंततः वीनू और विनायक से विनोबा तथा संत विनोबा से विश्वऋषि बन गये, जिन्होंने भूदान यज्ञ प्रारंभ कर पूरे देश में लाखों किलोमीटर पदयात्राएं की, और लाखों एकड़ जमीन भूमिहीन, दलित, हरिजन, गिरीजन, किसान बंधुओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए दान में प्राप्त की। और नारा दिया—'सबै भूमि गोपाल की, नहीं किसी की मालिकी।' 'गांव की खेती, गांव का राज, गांव-गांव में हो स्वराज्य।' मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर और गुरुद्वारे के भेद को मिटा दिया—भगवान के दरबार में जो चाहे सो जाय, भूखा-नंगा कोई न होगा, कोई न रहेगा। कहा, इबादत के लिए तीन चीजें चाहिए—प्रेम, करुणा और सत्य। फिर कहा, पन्द्रह साल पहले का नारा था 'जयहिन्द' आज का नारा है 'जयजगत'।

किसी भी धर्म को जितना विनोबा ने समझा, गांधी के अतिरिक्त शायद किसी और ने नहीं समझा। कितनी अनमोल पुस्तकें व रचनाएं हमें एक थाती के रूप में दी हैं, जिनपर हम गर्व कर सकते हैं। मां का स्मरण—गीता + आई = 'गीताई' नामक काव्य अमर हो गया। मां की स्मृति में विनोबा की आंखें भर आयी क्योंकि जिस मां को पढ़ने के लिए मराठी में 'गीताई' लिखी, वह मां इस दुनिया में नहीं थी।

जब-जब वीनू की नजरें आकाश के तारों पर पड़तीं, उसे अपनी ममतामयी मां की बात याद आती—''अरे विनायक तुम्हारे पांव में भोंवरा है। तुम बार-बार देश-भ्रमण करने वाले हो। वीनू, जिनके पैरों पर चक्र होते हैं, वह भाग्यशाली होता है और घूमने वाला होता है, जैसा रामदास स्वामी। वे तो बारह साल घूमते ही रहे थे, तुम किसी कारणवश घर से भागकर लोगों के लिए काम करोगे तो लोग तुझे भी भटकने वाला नहीं, रामदासजी के समान संत कहेंगे।'' मां की बात बिलकुल सच हो गयी थी, किन्तु इसे देखने के लिए मां नहीं रह गयी।

गांधी ने तब कभी विनोबा की पीठ थपथपाते सही कहा था—''विनोबा, तुम्हारी मां शरीर में भले ही यहां मौजूद न हों, पर 'गीताई' के रूप में सदैव तुम्हारे नजदीक ही हैं। अभी इस शोक को दिल से निकाल ही दो।'' उनकी गीताई विश्वविख्यात हुई और लोगों ने बाइबिल के बाद इसे ही प्राथमिकता दी।

भारतभूमि में कबीर के बाद यदि कोई क्रांतिकारी संत और फकीर हुआ तथा जो कबीर की तरह लकीर का फकीर नहीं था, वह था 'विनोबा'। उनकी जयंती पर उन्हें कोटिशः नमन व विनम्र स्मरणांजलि! ❑

निवेदन

'सर्वोदय-जगत' के अक्तूबर 1-15, 2016 का अंक 'गांधी-जेपी विशेषांक' के लिए हमने रचनाओं हेतु आप सभी से निवेदन किया था। बड़ी कृपा होगी यदि आप शीघ्रातिशीघ्र हमें अपनी रचनाएं भेज दें ताकि इस अंक में इसका इस्तेमाल कर पायें। धन्यवाद! –कार्य सं.

'सर्वोदय जगत' के सभी सुहृद पाठकों, शुभचिन्तकों, लेखकों से अनुरोध है कि अपने महत्त्वपूर्ण आलेख, रचनाएं, विचार एवं सुझाव पत्रिका के लिए भेजें। –कार्य सं.

शिक्षक दिवस : 5 सितंबर

मातृमुखेन शिक्षणम्

मातृमुखेन शिक्षणम् और मातृहस्तेन भोजनम् एक साथ जुट जाये तो हिन्दुस्तान की कला निखर जायेगी।

❑ **विनोबा**

मेरा अपना अनुभव बताऊं तो मुझे बहुत ग्रंथ पढ़ने को मिले हैं, जो अनुभव से भरे हैं और सत्संगति भी मिली है। उन सबको मैं एक पलड़े में रखता हूं और मेरी मां से मुझे साक्षात् भक्ति का जो शिक्षण मिला उसे दूसरे पलड़े में रखकर तौलता हूं, तो यह दूसरा पलड़ा भारी होता है। उसका वजन अधिक होता है।

कुछ लोग मुझसे पूछते हैं कि स्कूलों में धर्म-शिक्षा कौन देगा? अगर स्त्रियां शिक्षक हों, तो वे धर्म सिखला सकती हैं। तभी स्कूलों में भक्ति का वातावरण भी निर्माण होगा। बच्चे अच्छे निकलेंगे। मुझे सत्संगति अवश्य प्राप्त हुई, परंतु मेरी माता का मुझपर अधिक परिणाम हुआ। मां पूजा कैसे करती थी, सुबह कितनी जल्दी उठती थी, जरा-सा भी समय मिला तो कैसे भगवान का नाम लेती थी, अन्य व्यर्थ की बातों का उस पर कुछ भी प्रभाव न होता था यह सब मुझे याद है। इसलिए मैं अपने अनुभव से कहता हूं कि बचपन की शिक्षा स्त्रियों के ही हाथ में रहे और पुरुष ऊपर की पाठशालाओं में जायें। ज्ञान तो मां के मुंह से ही मिलना चाहिए। घर में मां होगी तो मेवा-मिठाई भी देगी और साथ-साथ रसोई पकाना भी सिखायेगी।

भगवान कृष्ण की कहानी है। वे गोकुल में गायें चराते थे, बच्चों के साथ खेलते थे और कंस आदि का भी काम तमाम कर चुके थे। लेकिन वसुदेव को लगा कि इतना बड़ा हो गया, फिर भी अनपढ़ ही रहा, इसे पढ़ना-लिखना आना ही चाहिए। इसलिए उन्होंने कृष्ण को सांदीपनि के आश्रम में भेजा।

जब कृष्ण की विद्या समाप्त हुई और वे घर लौटने लगे, तो गुरु सांदीपनि ने कहा—'वर मांगो।' कृष्ण ने कहा—'आप ही कुछ दीजिए।' सांदीपनि ने कहा—'नहीं, मेरी प्रतिष्ठा रखने के लिए ही कुछ मांग लो।' कृष्ण ने कहा—'ठीक' और उन्होंने वर मांगा 'मातृहस्तेन भोजनम्।' यानी मरने तक मुझे माता के हाथ से भोजन मिले। उन्होंने और कोई वर नहीं मांगा। सांदीपनि ने उन्हें वर दे दिया। भगवान कृष्ण जब तक जीये तब तक उनकी मां भी थीं।

इसके विपरीत उन बच्चों की क्या दशा होती होगी, जिन्हें कभी भी मां के हाथ का भोजन नसीब नहीं होता। कहीं होटल में खाते हैं या भोजनालय में। मां के भोजन में बहुत बड़ी विद्या है। उसमें सिर्फ घी और रोटी नहीं रहती, प्रेम भी होता है। इसलिए भगवान ने 'मातृहस्तेन भोजनम्' के साथ 'मातृमुखेन शिक्षणम्' वर मांगा। उतना मांगना उन्होंने मेरे लिए बाकी रखा। यह बड़ी ही सुंदर बात है—'मातृमुखेन शिक्षणम्' और मातृहस्तेन भोजनम्'। ये दोनों बातें एकसाथ जुट जायें तो हिन्दुस्तान की कला एकदम निखर उठेगी। हम दुनिया को सिखा सकेंगे। ज्ञान चारों ओर फैला पायेंगे। भावनाओं का निर्माण स्त्रियों के द्वारा ही शक्य है। धर्म को टिकाने का काम भी बहनों ने ही किया है। पकड़ रखने का स्वभाव स्त्रियों में आ जाये तो वे समूची दुनिया का नेतृत्व कर सकेंगी।

वातावरण संयमयुक्त रखने की जिम्मेवारी अगर ठीक ढंग से हमें निभानी है तो जरूरी है कि स्त्रियों के हाथ में छोटे बच्चों की शिक्षा दे देनी चाहिए। उपनिषदों में कहा है—*मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान्।* शिक्षण पहले माता से, बाद में पिता से और अंत में आचार्य से—यह शिक्षण का क्रम होना चाहिए।

पहले पांच साल की शिक्षा स्त्रियां ही दे पायेंगी। वह पुरुष का काम नहीं। अगर उनकी शिक्षा चल पड़े, तो क्या फिर बीड़ी, सिगरेट, शराब, चलेगी? ये सारे पुरुषों के चलाये हुए ढंग हैं।

स्त्रियों को पुरुष पर नियंत्रण करना चाहिए। उन्हें अपने हाथ में अंकुश रखना चाहिए। तभी समाज सुधर सकता है। पुरुषों ने बड़े-बड़े राज्य स्थापित किये, चुनाव लड़े, सजाएं दीं, सेनाएं खड़ी कीं, लड़ाइयां लड़ीं, दो-दो विश्वयुद्ध हुए—यह सब किया, फिर भी समाज को अभी तक कोई आकार ही नहीं मिल पाया है। अभी वह अपनी ही जगह पर है। उसमें परिवर्तन लाना होगा। लेकिन यह कौन करेगा? मैं समझता हूं कि इस काम में स्त्रियों से बहुत अच्छी मदद मिलेगी। इसके लिए सबसे पहले तो स्त्रियों को खुद को शिक्षा की जरूरत है और फिर शिक्षा उनके हाथ में होनी चाहिए। तभी पुरुषों के हाथों अच्छे-अच्छे काम होंगे।

इसीलिए सबसे पहले लड़कियों को पढ़ाना होगा। उन्हें तो लड़कों से भी अधिक ज्ञान की आवश्यकता है, क्योंकि लड़के बड़े होने पर मेहनत-मशक्कत करेंगे, अनाज की पैदावार बढ़ायेंगे। स्त्रियां बच्चों को बढ़ायेंगी यानी राष्ट्र को बढ़ायेंगी। इसलिए उनके पास ज्ञान की चाभी होनी ही चाहिए। हर घर में बिल्कुल बचपन से मां से ज्ञान पाने की सुविधा हो जाये, तो फिर पूछना ही क्या है? छोटे बच्चों के लिए अपेक्षित शिक्षण स्कूल में नहीं मिल सकता, वह मां ही दे सकती है। इसलिए उसे ज्ञान की अत्यावश्यकता है।

आज तक जितने भी ज्ञानी और संत पैदा हुए, वे सब-ज्ञानदेव, तुकाराम, शंकराचार्य आदि-पुरुष ही थे। स्त्री तो एकआध ही कहीं हुई, जैसे मीराबाई, मुक्ताबाई, जनाबाई। फिर भी आत्मज्ञान के क्षेत्र में स्त्रियां पुरुषों से आगे बढ़ सकती हैं। *मैं कई बार कह चुका हूं कि जब यहां*

शंकराचार्य जैसी स्त्रियां पैदा होंगी, तभी हिन्दुस्तान आगे बढ़ेगा।

मेरे विचार में प्राथमिकशालाएं स्त्रियों के हाथ में ही रहनी चाहिए। उनमें लड़के और लड़कियां एकसाथ पढ़ेंगे। अगर सारा प्राथमिक शिक्षण स्त्रियों के हाथ में रहेगा तो बच्चों का विकास ठीक-ठीक होगा, वे ठीक रास्ते लगेंगे। समाज को मर्यादा में रखने की भी कुछ शक्ति स्त्रियों में आयेगी। बच्चों की तालीम का काम आज पुरुषों के हाथ में है। वस्तुतः पुरुषों में बच्चों को तालीम देने लायक कोई अक्ल दीखती नहीं। बड़े होने पर भले ही पुरुष उन्हें तालीम दे सकें, परंतु प्राथमिक शाला के बच्चों के साथ कैसा व्यवहार किया जाये, यह पुरुष क्या जाने? यह सारा-का-सारा क्षेत्र स्त्रियों के हाथ में होना चाहिए।

शिक्षकादि दूसरे लोग कितनी भी कोशिशें करें, मां का काम वे नहीं कर सकते। इसलिए मुख्य काम तो माताओं को ही करना होगा। बच्चे बचपन से मां के पास ही होते हैं, अगरचे आजकल की माताएं बच्चों को चार-पांच साल की उम्र में ही स्कूल में भेज देती हैं, झंझट मिटी मानकर। लेकिन बच्चों को उत्तम संस्कार देने के लिए मां से बढ़कर साधन नहीं। इसलिए बच्चों को उत्तम संस्कार कैसे मिल सकेंगे इसकी योजना केवल शिक्षकों को करनी है ऐसा नहीं, वह इतनी महत्त्व की बात है कि सबको मिलकर ही योजना बनानी होगी। परंतु बच्चों को जो कहानियां कहनी हैं, वे मां के द्वारा कही जानी चाहिए। वह माताओं पर सौंपना चाहिए।

आज की माताओं को ऐसी कहानियां कम मालूम होती हैं। क्योंकि आज की माताएं 'येसफेस' (अंग्रेजी) पढ़ती हैं। आज हमारी लड़कियों को अंग्रेजी का अल्प-स्वल्प ज्ञान होता है, लेकिन प्राचीन ज्ञान कुछ होता ही नहीं। इसलिए उन माताओं से बच्चों को संस्कार मिलना कठिन-सा हो गया है। इसलिए इन माताओं के पास इस तरह का वाङ्मय पहुंचाना चाहिए। मां के द्वारा बच्चों को कहानी कहलायेंगे, तब वे संस्कारी होंगे।

एक बात सहज ही ध्यान में रखनी होगी। हम बच्चों को जो कहानियां कहेंगे, वह एक ही धर्म की नहीं होनी चाहिए, अनेक धर्मों की होनी चाहिए। ईसा मसीह, मुहम्मद पैगंबर की कहानियां कहनी चाहिए। ध्रुव-प्रह्लाद जैसे भिन्न-भिन्न धर्मों के साधु-संतों की कहानियां भी कहनी चाहिए। सेंट फ्रांसिस ऑफ ॲसिसी। ''आओ रे आओ' वह प्रेम से बुलाता है। किसको? सांप को। सांप आता है, उसकी गोद में प्रेम से बैठता है और फ्रांसिस आनंद से भगवान का नाम-स्मरण करता है। बच्चे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई नहीं होते, वे परमात्मा के बच्चे होते हैं। यानी वे आध्यात्मिक होते हैं, धार्मिक, पांथिक नहीं होते। हिन्दुस्तान का वैभव है कि अनेक धर्म के लोग यहां हैं, इसलिए इस दृष्टि से हमारा चिन्तन होना चाहिए।

मां पर जब इतनी बड़ी जिम्मेदारी आती है, तो बहनों को भी गहरा अध्ययन करना चाहिए। आज हमारे समाज की रचना पुरुष प्रधान है। सारे सामाजिक कार्य पुरुषों के हाथ में हैं। ऐसी हालात में स्त्रियों में आक्रमणकारी शक्ति पैदा होनी चाहिए। उनमें सरस्वती की तेजस्विता आनी चाहिए। वह थोड़े से अध्ययन से नहीं आयेगी। उसके लिए आत्मज्ञान चाहिए। आज स्कूलों में जो शिक्षण मिलता है वह ऊपर-ऊपर का बाह्य ज्ञान ही है। ठीक है, वह ज्ञान भी होना चाहिए। परंतु शक्ति देने वाली तो दूसरी ही चीज है, उसका अध्ययन होना चाहिए। स्त्रियों को अध्यात्मनिष्ठ बनना चाहिए, तभी पुरुषों को सुधारने की शक्ति उनमें आयेगी। पुरुष चाहते हैं कि स्त्रियां हमें मदद करें, परंतु हमें दिशासूचन न करें। *शंकराचार्य ने अपने शिष्यों को शारदा की उपासना करने को कहा। शारदा यानी सरस्वती। स्त्री शारदा की प्रतिनिधि होनी चाहिए। इसलिए बहनें अध्ययन करेंगी, तभी उनकी ताकत बढ़ेगी। सिनेमा देखना या बीड़ी फूंकने जैसे बुरे कामों में मर्दों की बराबरी करने की जरूरत नहीं, परंतु ज्ञान-ध्यान में वे पीछे रह जायेंगी तो समाज निस्तेज हो जायेगा। बच्चों की तरक्की के लिए बहनों को ज्ञान, ध्यान, मोक्ष और भलाई की बातों में आगे आना चाहिए।*

एक साल के लड़के और दो साल के लड़के के ज्ञान में बहुत अंतर होगा, लेकिन 50 साल के मनुष्य और 70 साल के मनुष्य के ज्ञान में खास अंतर नहीं होगा। कारण, पहले तीन-चार वर्षों में मनुष्य को ज्यादा से ज्यादा ज्ञान मिलता है। पहले तीन-चार सालों में मिले सारे ज्ञान को एक बाजू में और शेष जीवन में मिले ज्ञान को दूसरी बाजू रखें तो पहले ज्ञान का पलड़ा भारी होगा, क्योंकि वह ज्ञान 'ग्रास रूट' है, मूल है। यह ज्ञान बच्चा मां से ही पाता है, किसी आचार्य से नहीं। मनुस्मृति में गणित बताया है।

उपाध्यायन् दशाचार्यः आचार्याणांशतं पिता।
सहस्रं तु पितृन् माता गौरवेणाऽतिरिच्यते।।

—उपाध्याय (साधारण शिक्षक) से दसगुना आचार्य का गौरव है, आचार्य से सौ गुना पिता का और पिता से हजार गुना से भी अधिक माता का गौरव है। ऐसा नहीं कहा कि एक हजार पिता = माता, बल्कि यह कहा कि हजार पिता से बढ़कर माता है।

मां को भजन आदि कंठस्थ हों और वह घर में काम करते-करते बोलती रहे तो वह सुनकर बच्चे को सहज ही कंठस्थ हो जायेंगे। जो भी गुणवाचक शब्द हैं वे अधिकतर स्त्रीलिंगी हैं। भक्ति, मुक्ति, नीति, शक्ति, शांति आदि। गीता में भी कहा है—कीतिःश्रीर् वाक् च नारीणां स्मृतिर् मेधा धृतिः क्षमा।

पहले कहते थे छड़ी लगती है तो विद्या आती है। छड़ी मारने से क्या विद्या आयेगी? मास्टर की छड़ी देखकर जो विद्या होगी वह भी चली जायेगी! विद्या प्रेम से समझने से आती है। इसलिए मातृमुख से ज्ञान मिलना चाहिए। ❑

आधी आबादी

गृह-लक्ष्मी अब समाज-लक्ष्मी बने

❑ विनोबा

''हिंसा और व्यभिचार का मुकाबला करने के लिए स्त्रियों को आगे आना चाहिए। मातृत्व ब्रह्मचर्य में होता है, इसलिए ब्रह्मचर्य की शक्ति का विकास स्त्रियों को करना चाहिए। तभी मातृत्व की पवित्रता सिद्ध होगी और समाज की रक्षा होगी।''

आज मानव-समाज की जो रचना है, वह सर्वनाश की रचना है और वह पुरुषों ने अपनी बुद्धि से बनायी है। पुरुष आज तक भय पर ही सारी रचना करते आये हैं, अभय पर नहीं। सारी दुनिया को आग लगाना वे जानते हैं, इसी कारण इस बीसवीं सदी में पचीस सालों में दो बड़े-बड़े विश्वयुद्ध हो चुके हैं और तीसरे का भय सिर पर मँडरा रहा है। आज दिन-ब-दिन नयी-नयी सत्ता की रचना हो रही है और नयी-नयी समस्याएं खड़ी होती हैं, भय निर्माण होता है और समस्याओं का हल नहीं मिलता।

हिंसा में पुरुष-प्रधानता

जब तक देश का संरक्षण सैन्य-शक्ति से होता है, अहिंसा-शक्ति से नहीं होता है, तब तक पुरुषों का दर्जा ऊंचा ही रहने वाला है। पुरुष उजड्ड होता है और स्त्रियों की शरीर-रचना ऐसी होती है कि उन्हें गर्भधारण करना पड़ता है। इसलिए स्वभावतः उनके लिए हिंसा कठिन है। अगर रक्षण का साधन हिंसा ही रहेगी, तो पुरुष प्रधान जीवन रहेगा ही। इसलिए मेरी मांग है कि समाज का संरक्षण अहिंसा-पद्धति से ही करने की शक्ति होनी चाहिए।

भावी युग माताओं का

अभी तक समाज में हिंसा-शक्ति को स्थान था। अब हिंसा-शक्ति गड़बड़ा गयी है। वह समझ गयी है कि अब उसकी कुछ चलेगी नहीं। चलती है थोड़ी, लेकिन वह टिकने वाली नहीं। और आगे जो युग आने वाला है, उसमें अहिंसा-शक्ति को स्थान होगा और अहिंसा-शक्ति से समाज की रक्षा करनी होगी। तो, अहिंसक शक्ति में स्त्रियां पुरुषों से कम नहीं, ज्यादा ही साबित होनी चाहिए। यह महात्मा गांधी ने भी माना था।

पुरानी बात है। शराब की दुकानों पर पिकेटिंग करना था। गांधीजी ने कहा, बहनें जायेंगी। सुनने वाले भाई ने कहा, शराब की दुकान पर तो तमोगुणी लोग होते हैं, वहां स्त्रियों को भेजना क्या ठीक होगा? गांधीजी ने कहा, तमोगुणी लोगों के सामने सत्त्वगुणी को भेजना चाहिए। स्त्रियां सत्त्वगुणी होती है। यह भारत की परम्परा है। मनु ने जाहिर किया है—एक, साधारण उपाध्याय होता है, उससे आचार्य श्रेष्ठ होता है। सौ आचार्यों के बराबर एक पिता होता है। क्योंकि आचार्य ज्ञान देगा और अलग हो जायेगा, लेकिन पिता ज्ञान भी देगा और रक्षण भी करेगा। फिर कहते हैं, हजार पिताओं से एक माता का गौरव ज्यादा है। बड़ा ही सुन्दर वाक्य है। ऐसा वाक्य कहीं देखने को मिला नहीं, साहित्य में। और उपनिषदों ने आज्ञा दी विद्यार्थियों को **'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव'**—प्रथम नंबर में मान दे दिया माता को। इसलिए इसके आगे का युग माताओं का—बहनों का है।

पुरुष पर अंकुश रखें

एक जमाना था, जब यह माना गया था कि स्त्रियों का क्षेत्र घर है। आज भी वह घर उनके हाथ में रहेगा ही। परन्तु इन पचीस सालों के अंदर पुरुषों ने दुनिया का इस तरह बन्दोबस्त किया है कि आज दुनिया बिलकुल हैरान, बेजार हो गयी है। इस इन्तजाम में दो विश्व-युद्ध हो चुके और तीसरा कब होगा, कहा नहीं जा सकता। *स्त्री-पुरुष-समानता के नाम पर ये लोग स्त्रियों के हाथ में भी बंदूक देना चाहते हैं और स्त्रियों की पलटनें खड़ी करना चाहते हैं, बजाय इसके कि स्त्रियों के हाथ में वह अंकुश आये, जिससे कि पुरुषों को ऐसे कामों से परावृत्त कर सकें और अपने मातृत्व की शक्ति जीवन में ला सकें। यह करने के बजाय रंगरूट-भर्ती में उनको भी स्थान दिया जाता है और उनकी मदद की अपेक्षा की जाती है। दुनिया में यह सब निर्भयता के खयाल से चलता है और स्त्रियां भी समझती हैं कि शायद हमारे हाथ में बंदूक आ जाय, तो हम निर्भय बनेंगी। लेकिन निर्भयता का बंदूक के साथ कोई संबंध नहीं है। बंदूक के बल से अगर निर्भयता आती तो आज अमेरिका और रूस के लोग निर्भय बन जाते।* उनके पास इतने शस्त्रास्त्र हैं, फिर भी उनके हृदय में धड़कन है। मेरा खयाल है कि उनका तापमान भी नार्मल नहीं रहता होगा। दोनों एक-दूसरे से डरते हैं। यह सारा पुरुषों की व्यवस्था में हुआ है। इसलिए *अब स्त्रियों को सामाजिक क्षेत्र में आना होगा और पुरुषों पर अंकुश रखने का काम करना होगा। भारत की स्त्रियों से मेरी यही अपेक्षा है।*

करुणा का राज्य स्थापित करें

मैं चाहता हूं कि भारत की स्त्रियां अपनी आत्मशक्ति का भान रखकर सामने आ जायं। इसके आगे स्त्रियों के हाथ में समाज का अंकुश जाने वाला है। उसके लिए स्त्रियों को तैयार होना पड़ेगा। स्त्रियां शांति का कार्य उठा लेंगी, तो दुनिया बदल जायेगी और आज

देश के और दुनिया के सामने जो मसले उपस्थित हैं, उनसे मुक्ति होगी। पुरुषों से यह सब होने वाला नहीं है। अब उनका दिमाग ठिकाने पर नहीं है। उन्हें कुछ सूझता ही नहीं है। सूझता है तो यही कि सेना बढ़ाओ। इस तरह विज्ञान-युग में, जबकि पुरुषों की बुद्धि स्तम्भित हो गयी है, उस समय अगर स्त्रियां काम में आती हैं और अपने दैवी गुणों के साथ, संयमशीलता के साथ, अपनी मातृशक्ति के साथ सामने आती हैं, तो करुणा का राज्य स्थापित कर सकती हैं। वैसे तो हमारे समाज की रचना पहले से ही ऐसी बनी है कि बायीं ओर स्त्रियां और दाहिनी ओर पुरुष रहते थे। आज हमारे समाज की स्थिति उलटी हो गयी है। स्त्रियां पिछड़ गयी हैं और पुरुष आगे बढ़ गये हैं। *सच पूछिये, तो अब स्त्रियों को समाज की बागडोर अपने हाथ में लेनी चाहिए। उन्हें वामपंथी होना चाहिए और समाज को आगे ले जाना चाहिए।*

हिंसा और व्यभिचार का मुकाबला करें

स्त्रियां व्यर्थ की समता की बात में फंसेंगी, तो भयंकर होगा। 'स्त्री-पुरुष की बराबरी में है' इससे ज्यादा अपमानजनक उक्ति दूसरी क्या हो सकती है? आज तो पश्चिम में स्त्रियों की पलटनें भी होती हैं और स्त्रियां हाथ में बंदूक लेकर कवायद भी करती हैं। परन्तु ऐसे भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। मनु की यह बात याद रखनी चाहिए कि *'एक हजार पिता से एक माता का गौरव अधिक है।'* अभी तो पुरुषों ने स्त्रियों को अत्याचार का साधन बना रखा है। मातृत्व का रूपांतर व्यभिचार में हुआ है। हिंसा और व्यभिचार का मुकाबला करने के लिए स्त्रियों को आगे आना चाहिए। मातृत्व ब्रह्मचर्य में होता है, इसलिए ब्रह्मचर्य की शक्ति का विकास स्त्रियों को करना चाहिए। तभी मातृत्व की पवित्रता सिद्ध होगी और समाज की रक्षा होगी। मातृशक्ति रक्षक देवता है। पुरुष जब हिंसक शक्ति का आवाहन करते हैं, तब स्त्री उसे रूप देती है। उत्तर मां अंबा मां, पूरब मां काली मां। काली और दुर्गा के रूप में संहारिणी शक्ति की कल्पना है। इसलिए अब स्त्रियों को समाज की बागडोर अपने हाथ में लेनी चाहिए।

स्त्रियों का अपना ढंग : करुणा

आज तक स्त्रियों को सार्वजनिक काम में खींचने की कोशिश हुई है, लेकिन वह पुरुषों के ढंग से काम करने की हुई, स्त्रियों के ढंग से नहीं। उनसे कहा गया कि ''चुनाव में आओ, सेना में आओ, राइट-लेफ्ट करो, सामने उड़ने वाला पक्षी दीखे, तो उसे निशाना बनाकर अपनी कुशलता दिखाओ, जो मिलिटरीमैन की कुशलता मानी जाती है।'' मैं सोचता हूं कि पुरुषों के साथ स्त्रियां भी बंदूक तानने का अभ्यास करें, इसमें पुरुषों की बराबरी करें तथा इस तरह खुद को समाज-कार्य में अग्रसर मानें, तो स्त्रियों कभी भी अग्रसर नहीं हो सकतीं। इससे वे 'पुच्छसर' ही होंगी, क्योंकि हिंसा के मार्ग में स्त्रियों के लिए पचासों बाधाएं उपस्थित होती हैं, जो पुरुषों के लिए नहीं होतीं। हिंसा के मार्ग में पुरुष ही आगे जा सकते हैं। लेकिन अहिंसा-मार्ग में स्त्रियां पुरुषों की बराबरी कर सकती हैं और आगे भी जा सकती है। इसलिए यह जरूरी है कि स्त्रियां आगे आयें और अपने ढंग से आगे आयें। स्त्रियों का ढंग है करुणा का ढंग।

अहिंसा स्त्री-शक्ति को जगाती है

गांधीजी की विशेषता यह थी कि उन्होंने स्त्री-शक्ति को जगाया। वे स्त्री-शक्ति को इसलिए जगा सके कि उनका कार्य अहिंसा का था। समाज में जब तक सारा आधार हिंसा पर रहेगा, तब तक स्त्रियों का स्थान गौण रहेगा। एक झांसीवाली रानी निकली थी। परन्तु वैसी ज्यादा नहीं निकल सकतीं। अगर हमने यह माना कि हिंसा-शक्ति से समाज का बचाव होना चाहिए, तो उस कार्य में पुरुषों का ही मुख्य स्थान रहेगा, स्त्रियों का गौण स्थान रहेगा। अहिंसा में स्त्री का बहुत ज्यादा प्रवेश है। गांधीजी ने सारे सामाजिक क्षेत्र में अहिंसा को मान्य किया, इसीलिए वे स्त्री-शक्ति को जगा सके। व्यक्तिगत क्षेत्र में तो अहिंसा पहले से ही मान्य थी। परन्तु गांधीजी उसे सामाजिक क्षेत्र में ले आये। इसलिए इस क्षेत्र में स्त्रियां पुरुषों की बराबरी में या कुछ अधिक ही काम कर सकती हैं।

('नारी की महिमा' से साभार)

शोक-संदेश

सुपौल जिला सर्वोदय मंडल के मंत्री रह चुके सर्वोदय, संपूर्ण क्रांति के विचारक और भूदानी कार्यकर्ता श्री राजाराम मेहता अब हमारे बीच नहीं रहे। 76 वर्ष की आयु में 14 अगस्त, 2016 को अपराह्न 2.10 बजे अपने आवास भीमनगर में उनका देहावसान हुआ। पिछले 2 माह से मधुमेह के कारण वे काफी बीमार थे।

उनका अंतिम संस्कार 15 अगस्त, 2016 को झंडोतोलन उपरांत 11.15 बजे उनके बड़े बेटे बलराम के हाथों मुखाग्नि देकर सम्पन्न हुआ। राजाराम भाई 1974 आंदोलन में कई बार जेल भी गये। उन्होंने अंतिम सांस तक सर्वोदय और संपूर्ण क्रांति के विचारों से लोगों को प्रेरित किया। वे भूदान किसानों के मसीहा थे। सुपौल जिला सर्वोदय मंडल की ओर से राजाराम भाई को भावपूर्ण श्रद्धांजलि दी गयी।

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष भाई महादेव विद्रोही, मंत्री विजय भाई, ट्रस्टी मंडल के सदस्य डॉ. रामजी सिंह, तपेश्वर भाई, सर्वोदय जगत के कार्यकारी संपादक अशोक मोती, बिहार सर्वोदय मंडल की पूर्व अध्यक्षा कल्पना अशोक, वर्तमान अध्यक्ष त्रिभुवन नारायण सिंह, सूर्यनारायण भारती एवं पंचम भाई सहित भारी संख्या में सर्वोदयी कार्यकर्ताओं ने गहरी संवेदना व्यक्त की है तथा उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि दी है। **–पंचम भाई,** वीरपुर-सुपौल

दस्तावेज : एक

जलते चिराग हैं विनोबा

❑ काका कालेलकर

हरएक चिराग को गरमी और प्रकाश देने का भाग्य प्राप्त होता ही है। इनसे केवल गरमी और प्रकाश नहीं, किन्तु ज्योति भी प्राप्त करने वाले चिराग मिलना यह तो अहोभाग्य है। भगवान् की इच्छा हुई तो चिराग से जलने वाले चिरागों की परम्परा चलती रहती है।

गांधीजी के चले जाने के बाद देश में जो निराशा छायी हुई थी, उसे दूर करने का काम विनोबा ने काफी हद तक सफलतापूर्वक किया है। गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम के बारे में भी निष्ठावान् लोगों में 'निष्ठा कायम, लेकिन उत्साह गायब' ऐसी स्थिति हुई थी। विनोबा ने प्रथम भूदान का और बाद में ग्रामदान का संदेशा गांव-गांव में और घर-घर में पहुंचाकर देश में और कार्यकर्ताओं में नया चैतन्य पैदा किया। देश-परदेश के लोगों का ध्यान उनकी इस जिन्दा रचनात्मक प्रवृत्ति की ओर गया। विनोबाजी की इस क्रांतिकारी प्रवृत्ति को कितनी सफलता मिलेगी और वह स्थाई रूप धारण करेगी या नहीं, इसके बारे में अगर बहुत लोग साशंक रहें तो उसमें आश्चर्य नहीं। क्योंकि आज की दुनिया उन्हीं की है। *विनोबाजी ने एक जबरदस्त विचार-क्रांति की। केवल प्रवचन-प्रचार के द्वारा वह नहीं हो सकती। लोगों के पास से केवल श्रद्धा के बल पर वे लाखों एकड़ जमीन प्राप्त कर सके, इसलिए वह विचार-क्रांति क्रांति का रूप ले सकी।* केवल कल्पना करके लोगों के सामने रखने का काम हर कोई कर सकता है। 'फलाना विचार सबसे पहले मैंने प्रकट किया था' ऐसा श्रेय लेने वाले लोग दुनिया में ढेर पड़े हैं। सवाल यह नहीं कि फलाना विचार सबसे पहले किसके मन में उगा। कल्पना और विचार खुजली के जैसे होते हैं। उनको महत्त्व तभी आता है, जब कोई समर्थ पुरुष उसे चालना दे देता है। विनोबा ने ऐसी चालना दी। इसमें उनकी लोगों पर की श्रद्धा सिद्ध होती है। लोगों की श्रद्धा तो वे हासिल कर ही सके हैं।

शीतकाल के दिनों में कमरे में अँगीठी जलाने से वहां का वायुमंडल कुछ गरमी ले तो सका। लेकिन गरमी का माद्दा उसमें नहीं था। जड़ वस्तुएं संस्कार ग्रहण कर सकती हैं, उनको बढ़ावा देना उनका काम नहीं है।

हमारी दूसरी मिसाल है चिराग की। पुरानी कहावत सब जानते हैं—'चिराग से चिराग जलता है।' जिस चिराग के पास तेल है, बाती है उसमें ज्योति ग्रहण करने की शक्ति होती है। ऐसे दीप को जब जलते हुए दीप का सम्पर्क मिलता है, तब वह दीप स्वयं जलने लगता है और स्वयं प्रकाशदाता बनता है। उसने थोड़ी-सी गरमी ली और तुरंत उतनी ही गरमी देते रहने की शक्ति उसमें आ गयी।

गांधीजी ने यह द्विविध कार्य किया ही है। देश के लोगों को और दुनिया को गांधीजी ने काफी गरमी दी और उनके चिराग से जलते हुए दूसरे चिराग भी हम देखते हैं। अब सवाल यह है कि जवाहरलालजी और विनोबाजी जैसों ने जिस तरह गांधीजी वाले चिराग से ज्योति पायी और स्वयं चिराग बनकर जलने लगे हैं, क्या इनसे ज्योति पाकर स्वयं जलने वाले चिराग इनके आसपास तैयार हुए हैं? या इनका जीवन-कार्य अँगीठी की तरह आसपास के वायुमण्डल में गरमी पैदा करने का ही था?

हरएक चिराग को गरमी और प्रकाश देने का भाग्य प्राप्त होता ही है। इनसे केवल गरमी और प्रकाश नहीं, किन्तु ज्योति भी प्राप्त करने वाले चिराग मिलना यह तो अहोभाग्य है। भगवान् की इच्छा हुई तो चिराग से जलने वाले चिरागों की परम्परा चलती रहती है। बाकी शीशमहल में छोटे-छोटे असंख्य आईने होते हैं, जो चिराग के जलते ही उसे प्रतिबिम्बित करते हैं और कुछ काल के लिए भ्रम पैदा करते हैं कि वे भी सब चिराग ही हैं। केन्द्रीय चिराग के बुझ जाने के बाद पता चलता है कि चिराग कौन थे और केवल आईने कौन।

जब विनोबाजी चन्द हरिजनों को लेकर वैद्यनाथ के मंदिर में गये, तब वहाँ के पुजारियों ने या व्यवस्थापकों ने उनसे मारपीट की। विनोबा स्वेच्छा से वहां नहीं गये थे। उनसे कहा गया कि पुजारी की इच्छा है, इसलिए वे गये थे। जब अनुभव हुआ कि गलतफहमी है, तब वे चुपचाप वापस आये।

उन दिनों कई लोगों ने कहा—भले जाहिरा तौर पर नहीं—कि विनोबा को वहीं पर सत्याग्रह करना चाहिए था। भगवान् ने ही जब ऐसा मौका भेजा तो उससे मुँह नहीं मोड़ना चाहिए था।

बात सही है। किन्तु जब भगवान् की ओर से एक काम मिला ही था, तब विनोबाजी उसे गौण करके दूसरा काम हाथ में ले कैसे सकते थे? उन्होंने वैद्यनाथधाम का मौका भगवान् को ही सौंपा और भूदान के काम में एकाग्रता से लग गये।

ऐसा ही एक दूसरा प्रसंग उनके सामने आया और वह था डाकुओं के सवाल का। वे कह सकते थे कि डाकुओं का प्रश्न अहिंसा-धर्म की दृष्टि से यक्ष-प्रश्न है। भूदान-ग्रामदान का काम यदि मेरे हाथ में न होता तो उसे हाथ में लेता। लेकिन मेरी एक निष्ठा मुझे कहती है कि नया काम लेने का तुम्हारा अधिकार नहीं।

लेकिन विनोबा ने वैसा नहीं किया। प्रवाह-प्राप्त काम को हाथ में लिया। थोड़ा-सा छेड़कर उसे छोड़ दिया। उन्होंने इस सवाल की ओर जितना ध्यान दिया उसके अनुपात में (प्रमाण में) उनको काफी सफलता मिली, ऐसा मेरे जैसा आस्तिक कह सकेगा। लेकिन *रूढ़धर्मी लोगों को कहने का एक साधन मिला कि विनोबा जैसे भी जिसमें कामयाब नहीं हुए, उसमें औरों की तो बात ही क्या? इसलिए कानून, कोर्ट, पुलिस और सजा—इन्हीं का राज चलना चाहिए।*

विनोबा ने अश्लीलता के प्रचार के सामने अपनी आवाज उठायी, कुछ थोड़ा कार्य भी किया। लेकिन उन्हें वह छोड़कर असम प्रांत में जाने की प्रेरणा हुई। वहाँ का भाषा सवाल सचमुच एक टेढ़ी खीर है। लेकिन विनोबा ने उस सवाल को हाथ में लेने का अपना धर्म समझा।

संत और धर्म-प्रचारक जो काम करते हैं, उसका दृश्य परिणाम—कम या ज्यादा—उन्हीं के जमाने में हम देख सकते हैं। लेकिन उसका स्थायी परिणाम तो उनके साहित्य-प्रचार के और उनकी प्रचार-प्रवृत्ति के बाद ही शुरू होता है। श्री शंकराचार्य ने अपने जमाने में जो कार्य किया, वह अलग था। उनके बाद उनके मठों के द्वारा, उनके भाष्यों और सूत्रों के द्वारा जो कार्य हो रहा है, उसका हिसाब कौन लगाये?

गांधीजी, विनोबाजी और जवाहरलाल जी इस बात में भाग्यशाली हैं कि उनकी सारी विचार-राशि, उनका प्रभूत साहित्य आज की दुनिया को विस्तृत रूप में उपलब्ध है। ❑

दस्तावेज : दो

विनोबा का पुरुषार्थ भूदान

भूदान : सामाजिक क्रांति व समाज के नव-निर्माण का पहला कदम

❑ **जयप्रकाश नारायण**

विनोबाजी ने अपने ढंग से गांधीजी के उद्देश्य को पूरा करने का भारी पुरुषार्थ किया। भूदान-आंदोलन शुरू हुआ, तब प्यारेलालजी ने कहा था, ''गांधीजी का विचार आज पुनर्जीवित हुआ है। विनोबा उसका अनुवर्तन कर रहे हैं। बापू भविष्यवाणी की तरह जिस मूलगामी सामाजिक जागृति की चर्चा किया करते थे, उसकी ही शुरुआत आज हम देख रहे हैं।''

यों देखें तो पहले से बहुत चिन्तन-मनन करके विनोबाजी ने यह काम शुरू किया हो ऐसा नहीं लगता, बल्कि एक विशेष प्रेरणा हुई और उन्होंने यह काम शुरू कर दिया। विनोबा गांधीजी के बहुत निकटवर्ती रहे। उनकी सारी तालीम गांधीजी के पास हुई। गांधी-विचारधारा के साथ वह एकरस थे। अतएव 'गांधीजी का अधूरा काम पूरा करने के लिए भूदान-आंदोलन का यह काम मैं योजनापूर्वक उठा रहा हूँ', इस रूप में भले ही भूदान का काम शुरू न हुआ हो, फिर भी वास्तव में हो ऐसा ही गया।

भूदान-आंदोलन द्वारा विनोबाजी ने न सिर्फ भू-समस्या का हल हमारे सामने रखा, बल्कि यह भी स्पष्ट हो गया कि भूदान-आंदोलन अहिंसक तरीके से सामाजिक क्रांति तथा समाज के नव-निर्माण का पहला कदम है। गांधीजी ने अहिंसक क्रांति और नव-समाज-निर्माण के सैद्धांतिक विचार देश तथा दुनिया के सामने रखे थे, लेकिन उनके जाने के बाद धीरे-धीरे यह चीज आंखों से ओझल होने लगी थी और दिखायी नहीं दे रहा था कि उन विचारों पर कहीं अमल भी हो रहा है। बल्कि होने यह लगा था कि राजसत्ता हाथ में आने के बाद गांधीजी के अनुयायियों ने उसका रास्ता छोड़कर पाश्चात्य ढंग से राजतंत्र का रास्ता अख्तियार कर लिया। राज्यशक्ति के द्वारा ही वे समाज-परिवर्तन का काम करना चाहते थे। यह भी साफ था कि समाज-रचना का कोई स्पष्ट रूप भी उनके सामने नहीं था। ऐसा लगता था कि वे वर्तमान समाज में थोड़ा-बहुत फेर-बदल करके उसे कायम रखना चाहते हैं, जैसे किसी जर्जर मकान को इधर-उधर चिप्पी लगाकर खड़ा रखा जाय। ऐसी परिस्थिति में विनोबाजी ने भूदान-आंदोलन शुरू करके गांधीजी के विचारों को पुनर्जीवित किया।

भूदान : एक समग्र कार्यक्रम

अब भूदान का विचार ग्रामदान और ग्रामस्वराज्य के एक समग्र कार्यक्रम के रूप में विकसित हो चुका है। मुझे ऐसा लगता है कि विनोबाजी ने एक ऐसी परिस्थिति का निर्माण किया, जिसमें गांधीजी के ग्रामस्वराज्य का सपना साकार करने की सम्भावना दीखती है। गांधीजी का अधूरा काम इसके सिवा किसी दूसरे तरीके से आगे बढ़ सकेगा, ऐसा मैं नहीं मानता। आजादी मिलने के बाद गांधीजी देश की आर्थिक, सामाजिक और नैतिक आजादी के लिए अहिंसक आंदोलन

चलाने की सोच रहे थे। यह कदम उसी दिशा में है। *ग्रामदान-आंदोलन ने सामाजिक क्रांति, आर्थिक क्रांति और नैतिक क्रांति का संदेश भारत के गांवों तक पहुंचाया है।* ऐसा लगता है कि गांवों में गांधी-विचार के अनुसार ग्रामीण विकास का समग्र ढांचा खड़ा किया जा सकता है। इस आंदोलन में गांधीजी का अहिंसक क्रांति की प्रक्रिया का एक सार्वजनिक प्रयोग चल रहा है।

दण्ड-शक्ति के बदले जन-शक्ति

गांधीजी की प्रक्रिया मत-परिवर्तन की प्रक्रिया थी। वे न केवल नयी सभ्यता के निर्माण में हिंसा को वर्जित करना चाहते थे, वरन् प्राथमिक साधन के रूप में कानून का भरोसा भी नहीं करना चाहते थे। आगाखाँ महल में उन्होंने प्यारेलालजी से कहा था : ''जब तक हमारे हाथ में सत्ता नहीं है, तब तक तो विवशता के कारण मत-परिवर्तन हमारा साधन है। लेकिन जब हमें सत्ता प्राप्त हो जायेगी, तब मैं चाहूँगा कि मत-परिवर्तन हमारा स्वेच्छा से स्वीकृत साधन हो। कानून से पहले मत-परिवर्तन, यह क्रम होना चाहिए।''

इसलिए विनोबाजी जनता के पुरुषार्थ पर इतना अधिक जोर देते रहे। ग्रामदान-आंदोलन व्यापक रूप में मत-परिवर्तन और नये मूल्य तथा नये वैचारिक वातावरण का निर्माण करने वाला एक जन-आंदोलन है। वह लोगों के चित्त में और उनके पारस्परिक व्यवहार में दीर्घकालिक और तात्कालिक परिवर्तन लाता है। अपने पास जो है, उसमें दूसरों को सम्मिलित करने का शिक्षण वह दे रहा है।

गांधीजी का तरीका भी यही था—लोगों को समझाना, उनकी सेवा करना, उन्हें आत्मनिर्भर बनाना। उन्होंने दंड-शक्ति के बदले जन-शक्ति को ही आधार माना था। वे जानते थे कि भारत बहुत लम्बी अवधि तक गुलाम रहा है, इसलिए लोग सरकार पर आश्रित हो गये हैं। अंग्रेजों ने जनता के पराक्रम की, स्वावलम्बन की, अभिक्रम की भावना नष्ट कर दी है और 'सरकार हमारी माँ-बाप' जैसी पंगु-स्थिति पैदा कर दी है। इसलिए अब जनता का अभिक्रम जगाना ही मुख्य काम है, यह बात गांधीजी समझ चुके थे।

शासकों की नहीं, सेवकों की जमात चाहिए

एक बार मोटर-दुर्घटना में मेरे हाथ की हड्डी टूट गयी। डॉक्टरों ने उस हाथ पर प्लास्टर चढ़ा दिया। तीन महीनों के बाद जब प्लास्टर खोला तो देखा कि हड्डी तो जुड़ गयी लेकिन हाथ एकदम सूख गया है। फिर मुझे उसकी सेवा करनी पड़ी। महीनों तक उसकी अच्छी तरह देखरेख करनी पड़ी। डॉक्टरों ने उस हाथ की सेवा के लिए कुछ कसरत बतलायी। उससे धीरे-धीरे रुधिराभिसरण शुरू हुआ और हाथ में पुनः चेतना लौट आयी।

इसी तरह हमारे देश में जो शक्ति थी, उसकी सुगंध कपूर की तरह उड़ गयी लगती है। कारण यह है कि वह शक्ति सौ-डेढ़ सौ वर्षों तक गुलामी की प्लास्टर में बंद थी। उससे पहले भी दूसरे राजाओं ने भारत पर आक्रमण किया था, लेकिन वे भारतीय बनकर यहीं रह गये थे। उनमें और अंग्रेजों में अंतर यह था कि अंग्रेज भारत के नहीं बने थे। अंग्रेजों ने तो हमारी लोक-शक्ति की रीढ़ ही तोड़ डाली।

भारत की काया पर लगा पराधीनता का प्लास्टर 15 अगस्त, 1947 को कट गया। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि प्लास्टर कटने के साथ ही जनता अपने-आप एकदम सचेत होकर काम में लग जाय। प्लास्टर से मुक्त हुई काया में अभी चेतना का लौटना बाकी है। उसके लिए लम्बे धैर्य और प्रेमपूर्ण सेवा की जरूरत है। काफी लम्बी गुलामी ने हमारी जनत का पराक्रम और शौर्य छीन लिया है, उसकी कमर तोड़ दी है और उसे पंगु तथा परावलम्बी बना दिया है।

इसीलिए *गांधी ने 'लोकसेवक संघ' की बात कही थी। उन्होंने कहा था कि कांग्रेस का रूपांतर किया जाय और वह सेवकों की, खिदमतगारों की जमात बने।* सेवकों की जमात, शासकों की और हाकिमों की जमात नहीं, जो कहती है कि *''हमें सत्ता सौंपों, हमें गद्दी पर बैठाओ, तो हम आपके आँसू पोंछ देंगे, आपका पेट भर देंगे, आपका तन ढँक देंगे और आपकी टूटी-फूटी झोपड़ी आबाद कर देंगे। आप हमें केवल अपना वोट दे दीजिए और आपके सारे काम हम कर देंगे।''* जनता को अधिक दीन-हीन और पराधीन बनाने के लिए इससे अधिक और किसी चीज की जरूरत नहीं। इसीलिए गांधीजी ने कहा था कि *''अब शासकों की नहीं, सेवकों की जमात चाहिए। जनता को तैयार करना कठिन काम है।''*

गांधीजी जानते थे कि सरकार तो 'बेचारी' है। उसमें शक्ति ही कितनी है? जिस जमात के हाथ में सत्ता होगी, सरकार होगी, वह क्या कर सकेगी? सरकार के पास कितनी दौलत है, कितने लोग हैं? इतने बड़े देश का निर्माण करना क्या उसके लिए कभी भी सम्भव है? जबकि जनता के पास तो अपार शक्ति है। उस शक्ति को प्रकट करने के लिए जरूरत है सामुदायिक रचनात्मक कार्यों की। जनता को काम में लगाने की जरूरत है और वह भी विरोधी-आंदोलन चलाने के लिए नहीं, बल्कि ठोस रचनात्मक लक्ष्य सिद्ध करने के लिए। किसी के विरोध में आंदोलन करने के लिए जनता को उभाड़ देना एक सरल काम है, किन्तु उसे कुछ नया सिखलाने के लिए, पुरानी मान्यताओं को बदलने के लिए, मिल-जुलकर कोई ठोस काम करने के लिए तैयार करना बहुत कठिन काम है। इसके लिए जनता के बीच जाना पड़ेगा, वहीं जीना पड़ेगा और जो कुछ करना उपयुक्त हो, उसे करने का प्रशिक्षण धैर्यपूर्वक देना होगा।

गांधीजी जनता को इसी तरह जगाना

चाहते थे, राज्य-शक्ति के विकल्प में लोक-शक्ति खड़ी करना चाहते थे। उनका सक्रिय कार्यक्रम क्या होता, यह आज नहीं कहा जा सकता। उनमें मौलिक प्रतिभा थी। समाज-परिवर्तन के लिए कोई-न-कोई कार्यक्रम उन्होंने *प्रस्तुत किया होता।*

विनोबाजी ने (भूदान-आंदोलन के रूप में) ऐसा ही एक व्यापक लोक-आंदोलन का तथा लोक-शिक्षण का कार्यक्रम देश के लिए प्रस्तुत किया। उन्होंने गांधीजी के अधूरे काम को आगे बढ़ाया। गांधीजी के हाथ ही मशाल लेकर वे आगे बढ़े। गांधीजी के कार्य को असाधारण प्रतिभा के साथ व्यापक तथा विकसित करके विनोबाजी ने सिद्ध कर दिया कि गांधी के तत्त्वज्ञान में सामाजिक क्रांति को पूर्णता तक ले जाने का कोई व्यावहारिक तरीका है।

भूदान पहला चरण था, ग्रामदान दूसरा और, तीसरा चरण है—ग्राम-स्वराज्य का। गांधीजी ने गांवों पर विशेष जोर दिया। यह उनके चिन्तन की बुनियाद थी। आगे का कार्यक्रम गाँवों से ही शुरू करने की और ग्रामस्वराज्य की बात उन्होंने कही थी। वे स्वराज्य की बुनियाद ग्रामस्वराज्य को ही मानते थे। विनोबाजी ने इस ग्रामस्वराज्य के चिन्तन को बहुत आगे बढ़ाया। विनोबाजी के आंदोलन के कारण गांधीजी का अहिंसक क्रांति और आमूल समाज-परिवर्तन का विचार आज उन्नत हुआ।

अनुभव और प्रेरणा

भूदान-आंदोलन शुरू हुआ, तब पहले तो दूसरे लोगों की तरह मुझे भी यह एक मजाक जैसा लगा। इससे भूमि-समस्या कैसे सुलझेगी? इस तरह दान मांगते फिरेंगे, तब तो सैकड़ों वर्ष लग जायेंगे। किन्तु मैं बारीकी से देखता रहा। विनोबाजी से भी मिला। उनके साथ चर्चाएं कीं। इसके पीछे उनकी मूल कल्पना क्या है, वह सब समझ लिया और उसके प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता गया। मुझे महसूस हुआ कि स्वयं अनुभव करना चाहिए। इसलिए मैं गया जिले में घूमा। सात दिनों में साढ़े सात हजार एकड़ भूमि मुझे भूदान में मिली। मेरी समझ में आ गया और मैं इस आंदोलन में कूद पड़ा।

भूदान-यज्ञ काफी बड़ी आलोचनाओं का शिकार रहा। बहुतों ने इसके मत्थे असफलता का टीका लगाया, बहुतों ने उसका मखौल उड़ाया। मुझे इन पर कुछ नहीं कहना है। लेकिन मैं यह जरूर करना चाहता हूं कि भूदान-आंदोलन की करामात उसकी सारी भूलों और असफलताओं के बावजूद भी निःसंदेह उल्लेखनीय है। सामाजिक जीवन के दायरे में उसने अहिंसा के सक्षम तरीके को प्रकट किया। यह ठीक है कि न तो इसके द्वारा देश की भूमि-समस्या जैसा बड़ा प्रश्न हल हो पाया और न उसकी तुलना में भूमिहीनों का छोटा मसला हल हुआ। लेकिन भूदान ने भूमिहीनों के लिए जो कुछ भी किया, वैसा और कोई नहीं कर सका।

जमीन का पुनर्वितरण

जमीन के पुनर्वितरण का काम कितना महत्त्वपूर्ण है, इसका बोध दूसरों को है या नहीं, मैं नहीं जानता, किन्तु मेरे लिए तो इसका बहुत महत्त्व था और आज भी है। आर्थिक-सामाजिक क्रांति के संबंध में अगर कोई भी सोचेगा, उसका ध्यान जमीन के प्रश्न की तरफ जरूर जायेगा। तो इस संदर्भ में भूदान-आंदोलन के परिणाम के संबंध में ठोस वास्तविकता क्या है, उसकी खोज किसी ने की है? भारत जैसे देश में, जहां भूमि की समस्या विकट है, और प्रति मनुष्य जमीन का प्रमाण अत्यन्त अल्प है, वहां भी लगभग 40 लाख एकड़ भूमि स्वैच्छिक दान द्वारा प्राप्त हुई है और उसमें से 18 लाख एकड़ भूमि का देशभर में फैले 4 लाख 60 हजार भूमिहीन परिवारों में वितरण भी हुआ है।

जमीन बांटने के मामले में जितना भूदान सफल हुआ, उतना कानून सफल नहीं हुआ। नेहरूजी जैसे प्रधानमंत्री थे। उन्होंने हदबंदी-कानून के संबंध में राज्यों के मुख्यमंत्रियों को कितने-कितने पत्र लिखे। योजना आयोग की तरफ से कितने परिपत्र गये। समाजवादियों और साम्यवादियों के कितने आंदोलन चलते रहे। उनके भी दबाव पड़ते रहे। फिर भी स्वराज्य के 25 वर्षों में भूमिहीनों को कानून द्वारा जितनी जमीन बांटी गयी, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक जमीन भूदान द्वारा बांटी गयी।

क्या आपने कभी पूछा है कि हदबंदी के कानून से भूमिहीनों को कितनी जमीन मिली? मैं सरकारी परती जमीन के बंटवारे की बात नहीं करता, किन्तु हदबंदी के कानून के अंतर्गत भूमि-मालिकों से लेकर भूमिहीनों को कितनी जमीन दी गयी, इसकी बात करता हूं। इस तरह देखेंगे तो गुजरात में कानून द्वारा मात्र आठ हजार एकड़ जमीन मिली है और उसमें से छह हजार के लगभग बांटी गयी है, जबकि भूदान द्वारा गुजरात में 50 हजार एकड़ के लगभग जमीन बांटी जा चुकी है। महाराष्ट्र में हदबंदी के कानून के अंतर्गत लगभग सवा लाख एकड़ जमीन प्राप्त घोषित हुई है, किन्तु उसमें से मात्र 25 हजार एकड़ जमीन भी नहीं बांटी गयी है, जबकि भूदान द्वारा तीन लाख साठ हजार एकड़ जमीन भूमिहीनों को मिली है। लोग कहते फिरते हैं कि विनोबा को तो भूदान में मात्र रेतीली, पथरीली और बंजर जमीन ही मिली, किन्तु किसी ने यह आंकड़े देखने का और उसकी तुलना करने का भी कष्ट किया? जो जमीन बांटी जाती है, वह खेती के योग्य होने पर ही बांटी जाती है।

दूसरी तरफ कत्ल के रास्ते कितनी जमीन बाँटी गयी, यह भी देखिए। तेलंगाना में इतना सब हुआ, फिर भी एक एकड़ जमीन तक किसी को नहीं मिली। नक्सलवाड़ी में इतनी खून-खराबी हुई, फिर भी किसी के हाथ में जमीन नहीं आयी। इस तरह *जमीन के बंटवारे में कानून और कत्ल*

की अपेक्षा करुणा का मार्ग अधिक सफल हुआ है। भूदान आंदोलन ने इस देश में अठारह लाख एकड़ भूमि भूमिहीनों में बांटी है। और यह सब हृदयपूर्वक तथा स्वेच्छा से हुआ। इससे नैतिक ताकत पैदा होती है। देश में चारों ओर तोड़ने वाली ताकतें काम कर रही हैं, तब यह एक जोड़नेवाली ताकत बनती है।

समाज-परिवर्तन का ठोस कार्यक्रम

भूदान इस आंदोलन का पहला चरण है। ऊपर-ऊपर से देखने वालों को तो यह महज भूमि बांटने का ही एक आंदोलन लगेगा। *लेकिन यह आंदोलन केवल भूमिहीनों को भूमि बांटने का आंदोलन नहीं है। यह मानव को ऊपर उठाने का एक प्रयोग है। यह इस बात को समझाने का एक प्रयोग है कि आपके पास कुछ है तो उसमें अपने उस भाई को भी हिस्सेदार बनाइए, जिसके पास कुछ भी नहीं है। यानी भूदान एक समग्र अहिंसक क्रांति का प्रथम चरण था।* प्यारेलालजी के शब्दों में वह अहिंसक क्रांति के लिए व्यूहभेद करने वाला एक अग्रचरण है। भूदान ने हमारे देश में मौजूद सामंतवादी और पूंजीवादी समाज-रचना के मर्म पर चोट की।

दूसरा चरण है, ग्रामदान। वह समाज-परिवर्तन का एक ठोस कार्यक्रम समाज के सामने रखता है। वह गांव में सामूहिकता और परस्पर सहयोग की भावना जगाकर ग्रामस्वराज्य की स्थापना के लिए नींव डालता है। ग्रामदान का पहला स्वरूप बहुत क्रांतिकारी था। उसका स्वरूप था—भूमि का स्वामित्व छोड़ने के साथ गांव की सारी जमीन का जगभग समानता से पुनर्वितरण। ऐसे भी चार-पांच हजार ग्रामदान हुए। किन्तु व्यापकता के बिना क्रांति नहीं होती। क्रांतिकारी बनने के लिए समाज में कोई भी आदर्श व्यापक रूप से मान्य होना चाहिए। इसलिए विनोबाजी ने ग्रामदान का नयासुलभ स्वरूप प्रस्तुत किया। *...क्रमशः अगले अंक में*

दस्तावेज : तीन : संस्मरण

विनोबा के साथ दो दिन

❑ **श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी**

''आप लोग तो भ्रमर हैं। जहां सुगंध होगी, बिना बुलाये पहुंच जायेंगे। मैं जो काम कर रहा हूं, लगता है, उसमें वह सुगंध नहीं आ सकी है कि आप लोग पहुंच सकें। किन्तु निवेदन करूंगा, देश में जो एक महान क्रांति हो रही है, आप उसे देखें।''

''वाणी द्वारा ही भीतर और बाहर का मिलन होता है। वाणी की अंतर्जगत का बहिर्जगत से समागम कराती है। आप उसी वाणी के वरद पुत्र हैं। आपकी वाणी का वरदान इस यज्ञ को प्राप्त हो, यही मेरी कामना है। किन्तु यह वरदान आप तभी दें, जब वह हृदय से निकले। हृदय में स्फुरण न हो, तब भी आप कुछ कहेंगे तो वह फलदायी नहीं होगा। हृदय से निकली वाणी ही हृदय को स्पर्श करती है।''

ऊपर के ये दो उदाहरण मैं अपनी डायरी के पन्नों से दे रहा हूं, जो 3-8-1953 को गया में लिखे थे। संत विनोबा के प्राइवेट सेक्रेटरी का तार पाकर मैं उनसे मिलने गया पहुंचा था। कुछ और साहित्यिक बंधु भी थे। हमें संबोधित करते हुए संत ने जो एक प्रवचन दिया था, उसी के ये दो अंश हैं। संत ने पटना में तथा गया में भी, आग्रह किया था कि हम उनके साथ कुछ दिनों तक घूमें और स्वयं देखें कि इस आंदोलन के तत्त्व क्या हैं? मैंने कहा था कि जब आप मेरे जिलों में आयेंगे, आपकी सेवा में उपस्थित होऊंगा।

जब खबर मिली, विनोबाजी 31 तारीख की भोर में दरभंगा जिले से मुजफ्फरपुर जिले में प्रवेश कर रहे हैं और संयोग से मेरे थाने, कटरा में ही उनका प्रवेश हो रहा है तो मुझे अपने वादे की याद आयी और मैं दौड़ा-दौड़ा बुधकारा पहुंचा, उस सौभाग्यशाली गांव में, जिसमें संत के चरण मेरे जिले में पहले-पहल पड़े।

बुधकारा का वह पुण्य प्रभात बहुत दिनों तक याद रहेगा। संत अपनी यात्रा सदा चार बजकर बीस मिनट पर प्रारम्भ कर देते थे। हम लोग चार बजे से ही अपने जिले की सीमा पर उनकी प्रतीक्षा में खड़े थे। तरह-तरह के नारे लग रहे थे, तरह-तरह के झंडे उड़ रहे थे। तरह-तरह के लोग थे, नेता थे, कार्यकर्ता थे, मिनिस्टर थे, दारोगा थे, जमींदार थे, किसान थे, पूंजीपति थे, मजदूर थे, कांग्रेसी थे, सोशलिस्ट थे। कृष्णपक्ष की दशमी की हल्की चांदनी चारों ओर बिछी थी। आकाश में थोड़े ही तारे थे, जो अब झुक-झुककर अपने विलीन होने की सूचना दे रहे थे। झीना कुहासा छाया हुआ था। रह-रहकर ठंडी हवा का झोंका आ जाता था। हम बड़ी उत्सुकता से उस ओर देख रहे थे, जिस ओर से संत का आगमन होने वाला था। दरभंगा जिले में जहां संत का अंतिम पड़ाव था, वह यहां से कुछ दूर न था। यहीं से हम वहां की रोशनी देख रहे थे। अंत में वह रोशनी हिलती नजर आयी, फिर हमारी ओर

बढ़ती दिखायी दी। लोगों में आनंद का उल्लास आया। हमने कोशिश की थी, पांत बनी रही, किन्तु संत का आगमन हुआ कि ऐसा ज्वार उठा कि अब पांत की बात कहां सोची जा सकती थी। बीच में संत चल रहे थे, चारों ओर लोग दौड़ रहे थे। थोड़ी दूर यही स्थिति रही। हमने संभालने की कोशिश की, किन्तु सब निष्फल। संत रुके, सभी रुके। संत ने कहा—''तुम लोग हमारे पीछे चार-चार पांत में चलो।'' हमने लोगों को चेतावनी दी—''देखो, हम तुम्हें बढ़ने नहीं देंगे, चार-ही-चार आगे बढ़ो।'' संत ने झिड़क दिया—''नहीं-नहीं, हुक्म नहीं।'' फिर जनता की ओर मुखातिब होकर—''सुना, हममें से कोई भी तुम पर हुकूमत करने वाला नहीं। तुम स्वयं चार-चार पांत बनाते चलो और चले-चलो।''

जनता पर, लोगों पर, इतना विश्वास! ''कोई तुम पर हुकूमत करने वाला नहीं!'' मैं मन-ही-मन सोच रहा था, संत यह क्या बोल गये? गांधीजी के बारे में लोगों का कहना था—वह अराजकतावादी हैं। राज्य के मानी हैं शासन, हुकूमत। तुम पर कोई हुकूमत करने वाला नहीं—क्या अराजकता- वाद का इससे बड़ा सुख कुछ और हो सकता है?

आगे-आगे गैस के दो हंडे हैं, दो-तीन लालटेन भी हैं। संत बढ़ रहे हैं। छोटा कद, दुर्बल शरीर, उसे चादर से लपेटे। उनके पैर जल्द-जल्द उठ रहे हैं। पीछे के लोगों को दौड़ना पड़ रहा है। नारे लग रहे हैं, संत रुकते हैं, कहते हैं, ''नारे बंद करो, बिलकुल मौन चलो। ब्राह्ममुहूर्त है न, यह तो मनन-चिन्तन की बेला है।'' सब लोग चुप हैं, अब सिर्फ पैरों की आवाज हो रही है। संत का काफिला आगे बढ़ रहा है, बढ़ता जा रहा है।

बीच-बीच में गांव पड़ते हैं। कल संध्या को ही आते समय देख चुका हूं, रास्ते में सभी गांव सजाये गये हैं। प्रत्येक के द्वार पर तोरण-वंदनवार! अभी रात ही है, तो भी स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े सभी कतार बांधकर खड़े हैं। रामधुन कर रहे हैं। नारे लगा रहे हैं। उन्हें पहले से समझा दिया गया है, पैर मत छूना, माला मत पहनाना। ललचाई आंखों से संत के चरणों की ओर देखते हैं और बरबस उनके हाथ के फूल और मालायें उछल पड़ती हैं। नारियों की श्रद्धा-भक्ति देखते ही बनती है! बच्चों के उत्साह का क्या कहना! जब काफिला बढ़ता है, आपस में बातें होने लगती हैं। संत के साथ दो लड़कियां हैं, कुछेक औरतें फुसफुसाती हैं, संत तो बाल-ब्रह्मचारी हैं; किन्तु दूसरी औरतें कहती हैं, इससे क्या? क्या साधु-संत के बाल-बच्चे नहीं होते! इस सादगी पर किसकी हँसी नहीं छूटे।

धीरे-धीरे अंधकार दूर होता जा रहा है। हम कितने गांवों को पीछे छोड़ आये! आधी मंजिल तय हो चुकी है। इस अंधकार में, उस धूल-धक्कड़ में कौन किसको पहचाने? किन्तु, अब एक-दूसरे के चेहरे देख सकते हैं, पहचान सकते हैं। एक भूमिहीन किसान आता है, मुझसे पूछ बैठता है—''मालिक, इन अपने नेता न हतन?'' हां, यह सबके नेता हैं।'' किन्तु वह मेरे कथन की बारीकी पर कहां जाने वाला था! पूछ बैठा—'त जमीन कहिया तक मिलतई।'' मुझे पिछले चुनाव का दृश्य याद आया। जब हम लोग कहते थे, ''हम जमीन का फिर से बंटवारा करेंगे'', तो गरीबों की आंखें चमकने लगती

संत विनोबा और बेनीपुरीजी को नमन् व श्रद्धांजलि

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी को साहित्य जगत में 'कलम का जादूगर' कहा गया है। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने बेनीपुरी की एक पुस्तक की भूमिका में उनकी तुलना, खासकर शब्द चित्र खींचने की कला में, महान् लुडविक से की थी। 5 जून 1974 को गांधी मैदान, पटना की एक बड़ी सभा में, जिस दिन उन्होंने संपूर्ण क्रांति की घोषणा की, उस दिन भी जेपी ने अपने दो साहित्यकार मित्र—रामधारी सिंह दिनकर और रामवृक्ष बेनीपुरी—को बड़ी शिद्दत से याद किया था—''आज यदि बेनीपुरीजी होते तो आंदोलन पर जो शब्द चित्र खींचते, वे लोगों की प्रेरणा बन जाते।'' किन्तु बेनीपुरीजी का निधन 7 सितंबर, 1968 को ही हो गया था। जेपी को 1974 आंदोलन के दौरान निःसंदेह इन दोनों मित्रों की काफी कमी खली थी। एक वार्ता (1978) में जेपी ने, जहां इस पंक्ति का लेखक तथा वरिष्ठ सर्वोदय नेता सिद्धराज ढड्ढाजी उपस्थित थे, बड़े मर्माहत शब्दों में बेनीपुरीजी के लिए कहा था—...अभी तो उन्हें जाना नहीं था। बड़ी जल्दी चले गये।

बेनीपुरीजी जब जेपी हजारीबाग जेल में थे तब भी साथ थे और जिस दिन जेपी ने गया में भूदान में अपना जीवनदान दिया, उस दिन भी साथ थे। जेपी के जीवन पर लिखी उनकी पुस्तक 'जयप्रकाश' शब्द-चित्र खींचने की कला की दृष्टि से विश्व की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है, ऐसा मैं मानता हूं। विदेश के जिन महापुरुषों को बेनीपुरीजी ने अपनी जादू की छड़ी से जीवंत बनाया है, उनमें बरनार्ड शॉ, वियोनार्दो द बिंची, माइकेल रंजेलो, राफेल, टॉलस्टॉय, टर्नर, बालजाक, लाउद्रे आदि प्रमुख हैं।

बेनीपुरीजी को गांधी, विनोबा और जयप्रकाश, तीनों से बड़ा लगाव था। 'बापू की कुटिया में' और 'विनोबा के साथ दो दिन' बेनीपुरी की अद्भुत कृतियां इस बात को पुष्ट करती हैं।

अस्तु महान साहित्यकार व आंदोलनकारी बेनीपुरी की पुण्य-तिथि 7 सितंबर तथा विनोबा जयंती 11 सितंबर के अवसर पर एक शब्द-चित्र व संस्मरण 'विनोबा के साथ दो दिन' यहां प्रस्तुत है। पढ़ेंगे तो देख पायेंगे बेनीपुरीजी की कलम का जादू। इस अवसर पर गांधी, विनोबा, जेपी और बेनीपुरी, सबको हम सादर नमन करते हैं। **–कार्य. संपादक**

थीं। एक मुसहर को एक आदमी समझाने लगे—जमीन तुम्हें कहां से मिलेगी? क्या जमीन रबर है, जो लंबी की जा सकती है? बीस बीघा, एक गाय। यह सब सपना है सपना! वह मुसहर पढ़ा-लिखा नहीं था, किन्तु मूर्ख नहीं था, जैसा हम लोग हर ग्रामीण को मान लेते हैं। उसने कहा था—''ओ मालिक, बीस बीघा हम कहां मंगइछी? बीसो धूर हमरा सभके हिस्सा में पड़तई की न?'' चुनाव में हम हार गये। उन्हें लगा था, अब जमीन नहीं मिली। उनकी आशा फिर जग गयी है। बीसों धूर सिर्फ एक ही कट्ठा—उतनी जमीन भी उन्हें मिल जाय, जितनी में उनका घर है, तो उनकी दासता की कड़ी कट जाय। हम गणितज्ञ उनकी मनोवृत्ति को क्या जानें? वही मनोवृत्ति है, जो उन्हें इस संत के पीछे-पीछे दौड़ा रही है। पांच-छह मील की दूरी में ही सफेदपोशों की भीड़ प्रायः छट चुकी है। बस, अब अधिकांश वे ही लोग संत के साथ रह गये हैं, जिन्हें जमीन चाहिए या जो उन्हें जमीन दिलाने को दृढ़प्रतिज्ञ हैं।

घड़ी कहती है—साढ़े छह बज चुके हैं। अब संत के जलपान का समय आ पहुंचा है। संत रुक जाते हैं। एक पात्र में दही दिया जाता है। एक-एक चमचा मुंह में रखते हैं, गुलगुलाते हैं, कंठ के नीचे उतारते हैं। हम उनसे कह रहे हैं—''इस जिले में अधिक जमीन नहीं मिलेगी, क्योंकि जमीन कीमती है। यहां दस बीघे की जो कीमत होगी, हजारीबाग के हजारों बीघो की कीमत उतनी नहीं होगी।'' संत मुस्कराते हैं—''जमीन का मोह तो समझ में आता है, पर यह कीमत का क्या मोह! कीमत माने रुपये न? तो रुपये की भला कौन-सी कीमत, जिसे न तो खाया जा सके, न पहना जा सके!'' मुझे अराजकवादी साहित्य की याद आती है, प्रिंस कोपाटकिन, बाबुनिन। सभी शासन के दुश्मन, सिक्कों के दुश्मन; शासन और सिक्का—एक ही सिक्के के दो पहलू।

सूर्योदय होने के बाद संत चलते समय बातें भी करते जाते हैं। जिन लोगों को कुछ मसले पेश करने होते हैं, इसी समय पेश करते हैं। तरह-तरह के मसले पेश किये जा रहे हैं, दो-चार शब्दों में ही उनका समाधान कर दिया जाता है। शब्दों में सूत्र का-सा चमत्कार! बड़ी-बड़ी बातों को भी यों थोड़े शब्दों में सुलझा देते हैं कि आश्चर्य होता है।

बीच में एक खादी-केन्द्र है। वहां थोड़ी देर ठहरते हैं। कुछ कत्तिनें चर्खा चला रही हैं। उनमें से कुछ के शरीर पर मिल के कपड़े हैं। संत कहते हैं—''तुम स्वयं खादी नहीं पहनती हो तो दूसरे लोग तुम्हारी खादी क्यों पहनेंगे? अपने सौदे का आप अपमान करती हो?'' फिर लोगों से कहते हैं—''खादी ही पहनो। कहोगे, खादी महंगी है। तो मैं कहता हूं, जितने पैसे खादी में अधिक लगते हैं, उसे दान समझो। कपड़े-के-कपड़े मिले, दान का पुण्य भी मिला।'' बात सीधी, अर्थशास्त्र की उलझन नहीं। इसी भाषा को ग्रामीण समझ सकते हैं। संत भारतीय जनता की नब्ज पहचानते हैं। उसे उसी की भाषा में समझाते हैं, इसीलिए वह तुरंत समझ भी जाती है, नहीं तो किसने आशा की थी, भूमि का इतने बड़े पैमाने पर दान मिल सकेगा?

यह धनौर गांव—धन का गांव है, बड़े लोगों का गांव है, बड़ा गांव है! यहां बड़े लोग आते ही रहते हैं, मिनिस्टर, नेता, साधु, संत, राजा, बाबू। किन्तु आज धनौर में जो दृश्य है, जो उत्साह है, वैसा कभी देखा गया था? भोर से ही इस गांव में धूम मची है। कौन-सा दरवाजा है, जिस पर कुछ अतिथि नहीं हों? बहुत बड़ा है मेरा थाना। यहां से मेरा घर सीधी राह से भी दस मील होगा, किन्तु मेरे गांव के बाद के गांव से भी लोग आये हैं और सबसे प्रसन्नता की बात यह है कि सभी विचार के लोग आये हैं, बेदौल का जमुना भी आया है और जनाढ़ के झाजी भी। एक के सिर पर लाल टोपी, एक के सिर पर गांधी टोपी। मैं गद्‌गद हो उठता हूं—संत से कहा भी कि बाबा, आपका सबसे बड़ा कमाल यह है कि आपने बिछुड़े लोगों को घसीटकर एक साथ खड़ा कर दिया है। आज मैं उस दरवाजे पर टिका हूं, जो दरवाजा पिछले चुनाव में मुझे हराने के लिए अड्डा बना हुआ था। मैं उन लोगों के साथ घूम रहा हूं, हँस रहा हूं, बातें कर रहा हूं, जो मुझे देखकर ही कतराकर निकल जाना चाहते थे, या मैं ही जिन्हें देखकर आंखें मोड़ लेता था।

अपनी उसी डायरी में ये पंक्तियां पा रहा हूं—''आपको गणित से प्रेम नहीं। मैं भी सफलता की माप गणित के अंकों से नहीं करता। इसका उतना महत्त्व नहीं है कि मुझे कितने लाख एकड़ जमीन मिली। किन्तु इसके द्वारा लोगों को जो एक नया दृष्टिकोण मिल रहा है, उसका महत्त्व है। जब रामचरण नामक एक अंधा रातोरात बैलगाड़ी पर आकर अपनी कुल जमा पांच एकड़ जमीन दे जाता है, तो मैं समझता हूं, इस आंदोलन ने लोगों के हृदय को जगाया है।''

यहां भी उन जगे हुए हृदयों की झलक पाता हूं। जानता हूं, इनमें कुछ लोग अपने नेतृत्व के लिए भी दौड़-धूप कर रहे हैं, कुछ अपने महत्त्व के लिए ढोंग भी कर रहे हैं। किन्तु मैं उन लोगों में नहीं, जो मानव-मन को सदा दूषित ही समझते हैं। कभी-कभी तो यहां तक पाया है, ढोंग से ही कोई काम प्रारम्भ किया गया, किन्तु उस काम की पवित्रता ने ढोंग को जला दिया, वह व्यक्ति थोड़े ही दिनों में कुंदन बन गया!

झुंड-के-झुंड लोग आ रहे हैं। चारों ओर नर-मुंड-ही-नर-मुंड दिखाई पड़ रहे हैं। 1931 के बाद लोगों में, साधारण जनों में, ऐसा उत्साह नहीं दिखाई पड़ा था। बीच में जो चीजें आयीं, वे ऊपर की तरंगें थीं, उनमें जोर था, उफान था; किन्तु यह गहराई में की हलचल है जो मर्म को आलोड़ित करती है। एक विचित्र बात देख रहा हूं। जो लोग 1921 में शामिल हुए थे, किन्तु कारणवश

घरों में बैठ गये थे, उनसे भी भेंट हो रही है। उनकी आंखें कहती हैं, बत्तीस साल बाद फिर कुछ होने जा रहा है क्या?

संध्या को तीन बजे संत के प्रवचन के लिए सभा हो रही है। दूर-दूर से लोग आ रहे हैं, किन्तु संत समय के पाबंद हैं, निश्चित समय पर ही कार्यारम्भ हो जायेगा। प्रार्थना के कुछ पर गाये गये, श्लोक पढ़े गये, फिर रामधुन हुई। ''रघुपति राघव राजा राम''— यहां गांधीजी की रामधुन की टेक थी। संत ने उसमें थोड़ा परिवर्तन कर दिया है। मेरा मन कहता है, गांधीजी की टेक ही जारी रखी गयी होती तो क्या अच्छा होता? किन्तु तुलसीदास की वह पंक्ति याद आ जाती है, जिसमें लक्ष्मण सदा राम-सीता के पद-चिह्नों को बचाकर ही पैर रखते हैं।

संत की प्रवचन-मुद्रा भी गांधीजी से कुछ भिन्न है। वह पलथी मारकर बैठ जाते हैं, पहले एक-दो बार खांसकर अपने कंठ को साफ कर लेते हैं, फिर बोलना प्रारम्भ कर देते हैं। जब किसी बात पर जोर देना होता है, पलथी पर दोनों हथेलियों को पटकते हैं। हथेलियों के पटकने का शब्द भी लाउडस्पीकर से सुनाई पड़ता है।

संत की भाषा भी बड़ी विशुद्ध है। हिन्दी का व्याकरण जटिल है, संत की मातृभाषा मराठी है, तो भी पूरे प्रवचन में दो-तीन से अधिक व्याकरण की अशुद्धियां नहीं देखी गयी—वे भी बारीक भूलें। ऐसी भूलें तो हिन्दी के विद्वानों से भी हो जाती हैं।

फिर संत की विवेचन-प्रणाली शास्त्रीय होती है। हृदय और मस्तिष्क का अद्‌भुत संतुलन रहता है वहां।

पाकिस्तान और अमरीका के सैनिक सुलहनामे को लेकर बड़ी खलबली मची है। उसी को आधार बनाकर संत ने प्रारंभ किया। पाकिस्तान ने क्यों समझौता किया? क्योंकि वह अपने को कमजोर समझता है। हम क्या करें? क्या हम भी किसी बड़े राष्ट्र से मदद लें? यह तो गुलामी को फिर से निमंत्रण देना होगा। क्या हम सैनिक-शक्ति बढ़ायें? फिर निर्माण का काम बंद कर देना होगा। जो आज भी धनहीन हैं, उन्हें और गरीब बनाना होगा। तो किया क्या जाये? देश को मजबूत बनाओ। देश की मजबूती सेना से नहीं प्रकट होती, जनता की एकता से, ताकत से प्रकट होती है। जिस देश में धनी और गरीब में इतना भेद हो, जिस देश में आदमी आदमी को अछूत समझे, जिस देश में नारियों को कैद में रखा जाय, वह देश मजबूत नहीं हो सकता। इन भेदभावों को दूर करो, इस विषमता को दूर करो, इस अन्याय को दूर करो।

संत के प्रवचन का यह सार था। उन्होंने कहा—इस समझौते को मैं भगवान् का वरदान समझता हूं। हम धीरे-धीरे कार्य कर रहे थे। उन्होंने हमें चेतावनी दी है— जल्दी करो।

फिर अपने भूदान-यज्ञ का महत्त्व विस्तार से बताया। पृथ्वी माता है। जो लोग अपने को भूमिपति मानते हैं वे यही समझते हैं कि कौन-सी गाली अपने को दे रहे हैं। पृथ्वी के मालिक तो भगवान् हैं—''सबै भूमि गोपाल की।'' भगवान् की चीज पर भगवान् के सभी बेटे-बेटियों का बराबर हक है। आप इसे उसका हक दीजिये, खुशी से दीजिये, इसी में आपका बड़प्पन है, देश का कल्याण है।

... क्रमशः अगले अंक में

'पुस्तकालय योजना' के लिए किताबें हम देंगे

सर्व सेवा संघ प्रकाशन चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी वर्ष के अवसर पर 'पुस्तकालय योजना' प्रारम्भ कर रही है। इस योजना के तहत मात्र 2 हजार रुपये में घर बैठे आपको एक सौ किताबों का सेट मिल जायेगा। इस सेट में बच्चों के लिए 40 कहानियों की पुस्तकों के अलावा खेती, स्वास्थ्य, जीवन-चरित्र, आत्मकथा, सामाजिक विषयों व अध्यात्म से संबंधित पुस्तकें हैं।

बहुत से लोग सोचते हैं कि पुस्तकालय खोला/चलाया जाय परंतु बड़े ताम-झाम की बात सोचकर अपने खयाल को झटक देते हैं। परंतु सर्व सेवा संघ प्रकाशन की पेशकश का लाभ उठाकर आप अपने घर, क्लब, विद्यालय, पत्र-पत्रिकाओं की दुकान या अन्य किसी सार्वजनिक केन्द्र में इसकी शुरुआत कर सकते हैं।

भारत में एक बहुत बड़ा नव-साक्षर एवं नव-शिक्षित जमात है। यह ऐसी जमात है जिसमें से अधिकांश की पहली पीढ़ी ही पढ़ी-लिखी है। इस पीढ़ी को किताबें चाहिए, सस्ती व गुणवत्तायुक्त। सर्व सेवा संघ प्रकाशन इस मानदंड को पूरा करता है। उल्लिखित समूह में गरीबों की संख्या बहुतायत है। गरीबी से मुक्ति के कई तरीके हैं—जिसमें से एक है—परिश्रम के साथ ज्ञान का मेल। ऐसा किया जाय तो परिश्रम का गुण संवर्द्धन होगा ओर जीवन का नया द्वार खुल जायेगा।

मित्रो!

बच्चों को पढ़ने का अभ्यास करायें। नये युग के लिए किताबों को दोस्त बनायें।

× × ×

सर्वोदय बुक स्टाल, व्यवस्थापक हेतु आवेदन आमंत्रित

पूर्व मध्य रेलवे, हाजीपुर रेलवे स्टेशन हेतु नये व्यवस्थापक की आवश्यकता है।

इच्छुक व्यक्ति 30 सितंबर 2016 तक अपना आवेदन सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी में प्रस्तुत करें। स्थानीय भाषा-भाषी एवं गांधी-विचार में निष्ठा रखने वाले व्यक्ति को प्राथमिकता दी जायेगी।

–संयोजक, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-221001

महाप्रयाण

संत विनोबा की अपूर्व समाधि-यात्रा

❑ मूलचन्द जैन

पूज्य बाबा का व्यक्तित्व अद्‌भुत था। वे अध्यात्म परायण साधक थे तो वैज्ञानिक भी थे। वे भक्त और गणितज्ञ एकसाथ थे। उनकी हर प्रवृत्ति और प्रक्रिया विज्ञान के आधार पर चलती थी। उनका स्पष्ट मत था कि अब हम ऐसे समय में रह रहे हैं कि आत्मज्ञान और विज्ञान का समन्वय साधना अनिवार्य है। यही कारण है कि उनका संपूर्ण जीवन अहिंसा की तलाश में प्रयोगरत रहा।

मैं यहां उनके अंतिम समय की, देह-विसर्जन की अपूर्व घटना के विषय में ही लिख रहा हूं। जैसे ही प्रवतिवर्ष दीपावली का पर्व आता है, बाबा की छवि और उनके शब्द याद आ जाते हैं। बाबा ने अपने अंतिम आठ-दस दिनों में अन्न-जल का त्याग कर दिया था और ठीक दीपावली के प्रभात में यानी भगवान महावीर के निर्वाण दिवस पर देह त्यागा था। यह उनके दृढ़ निश्चय की अविस्मरणीय गाथा है।

सन् 1953 में 108 परमपूज्य आचार्य शांतिसागरजी ने कुंथलगिरि में सल्लेखना ली थी। तब मैंने उस महान आत्मा के दर्शन किये थे। कुछ वर्षों के बाद अपने सान्निध्य में रहे एक क्षुल्लकजी की सल्लेखना 108 पूज्य मुनिश्री आर्यनन्दीजी ने कुंथलगिरि में ही सम्पन्न करायी थी। तब भी मैं उपस्थित था। सल्लेखना का अर्थ है समाधिपूर्वक, समतापूर्वक, अन्न-जल आदि का क्रमशः त्याग करते हुए मरण को स्वीकारना। ऐसा समाधिमरण ही मृत्यु महोत्सव कहलाता है। जैनदर्शन और धर्म में मृत्यु को परममित्र कहा गया है।

लेकिन यह एक अपूर्व घटना हमारे सामने घटित हुई कि पूज्य विनोबाजी जैसे कर्मयोगी, गीता-भक्त ने सल्लेखनापूर्वक मरण को वरण किया।

सन् 1976 की बात है, पूज्य जिनेन्द्र वर्णीजी उन दिनों वाराणसी में थे। उन्होंने जैन साहित्य की विपुल सेवा की। अस्वस्थ भी थे। वे सल्लेखना लेना चाहते थे। अचानक वाराणसी से तार आया कि वर्णीजी सल्लेखना ले रहे हैं, विनोबाजी से बात कर वर्णीजी को सल्लेखना लेने से परावृत्त कीजिये, रुकवाइये। मैं तत्काल पूज्य बाबा निकट गया। उन्होंने अपनी गणित की भाषा में पूछा, ''निर्वाण के समय महावीर की आयु कितनी थी? कबीर की अवस्था कितनी थी?''

उस समय वर्णीजी की अवस्था 50 के लगभग रही होगी। सबकी उम्र जानने पूछने के बाद बाबा ने सहज भाव से कहा कि पहले बाबा सल्लेखना लेगा, बाद में वर्णीजी का नंबर आयेगा और ऐसा ही हुआ।

उसी समय बाबा ने पत्र लिखा और वह पत्र लेकर मैं वाराणसी पहुंचा। उधर हमारे स्नेही मित्र पं. धन्यकुमारजी भोरे (कारंजा निवासी) पूज्य आचार्य समन्तभद्र महाराज का पत्र कुंभोज बाहुबली से लेकर वाराणसी पहुंच गये। बाबा तथा आचार्य समन्तभद्र महाराज के आदेश को मानकर वर्णीजी तब सल्लेखना से परावृत्त हुए। उल्लेखनीय है कि फिर विनोबाजी के महाप्रयाण पश्चात् ही वर्णीजी ने, आचार्य विद्यासागरजी महाराज के मार्गदर्शन तथा निर्देशन से सल्लेखनापूर्वक सम्मेदा चल के पादमूल में देह त्यागा।

सेवाग्राम आश्रम हमारे स्नेही आदरणीय रामभाऊजी म्हैसकर ने एक छोटी-सी पुस्तक मराठी में 'विनोबांची महाप्रयाण यात्रा' लिखी है। उसमें लेखक ने डॉ. नेमीचंदजी जैन, संपादक 'तीर्थंकर' तथा बाबा डॉक्टर करुणाकर त्रिवेदी जो सेवाग्राम महात्मा गांधी मेडिकल कॉलेज के मुख्य चिकित्सक थे, दोनों के प्रश्नोत्तर भी दिये हैं, इस पुस्तिका में दो महत्त्वपूर्ण प्रसंगों का उल्लेख छूट गया है।

पूज्य बाबा ने एकाएक 6 नवंबर 1982 के दिन अन्न-जल त्याग दिया। इसे 'सल्लेखना', 'संथारा' कहा जाता है, कल्पना की ओर मत देखो। इस तरह आज विज्ञान और आत्मज्ञान, दोनों के ही हमले मन पर हो रहे हैं। इसलिए जो मन ऊपर उठेंगे, वे ही दुनिया को जीतेंगे।

आध्यात्मिक चिन्तन अनिवार्य : मन के ऊपर की भूमिका विज्ञान की है। आज का विज्ञान आपको उस भूमिका तक उठने की जबरदस्ती कर रहा है। पहले जमाने में भी यह मालूम था। उपनिषदों में कहा है, प्राणो ब्रह्मेति, मनो ब्रह्मेति, विज्ञानं ब्रह्मेति। प्राण की भूमिका प्राणियों की है, मन की भूमिका मनुष्यों की है और विज्ञान की भूमिका ऋषियों की है। पहले जमाने में वैयक्तिक विकास करते-करते मनुष्य विज्ञान की भूमिका पर पहुंचता था। वह सारा व्यक्तिगत विकास का विचार था। एक मनुष्य विज्ञान की भूमिका में रहता था और बाकी सारे लोग मन की भूमिका में रहते, यह हालत थी।

विज्ञान की भूमिका में पहुंचने वाला श्रेष्ठ माना जाता था! वह सारी ऐच्छिक आध्यात्मिक प्रक्रिया थी और उसमें व्यक्ति अग्रसर होते थे, परंतु कोई महापुरुष ऐच्छिक तौर पर विज्ञान की भूमिका प्राप्त करे, यह इस जमाने में नहीं चलेगा। अब सभी लोगों को अनिवार्य रूप से विज्ञान की भूमिका पर आने का नाटक करना होगा। मान लीजिए, मैं झूठा हूं और नाटक में मुझे हरिश्चंद्र की भूमिका करनी हैं। मैं वहां अपने झूठ को ही याद करता रहूंगा, तो हरिश्चंद्र की भूमिका का अभिनीत कैसे होगी? जैसे हरिश्चंद्र की भूमिका अभिनीत करने के लिए अपना झूठ भूलना होगा, वैसे विज्ञान युग में हम सबको अपनी मनोभूमिका भूल जानी होगी और वह भूलेंगे आध्यात्मिक प्रयत्न से। इसका अर्थ यह हुआ कि विज्ञान स्वयं हर मनुष्य को आध्यात्मिक चिन्तन की जबरदस्ती कर रहा है। ❑

व्यवस्था बनाम लोक

कभी राष्ट्रीयकरण, कभी निजीकरण

❑ अंजलि/जयकिशन

आजादी के 70 वर्षों बाद भी लोग बुनियादी सुविधाओं पानी, बिजली, शौचालय (आवास), सड़क, रोजगार आदि से वंचित है। लोकतांत्रिक भारत की केन्द्रित सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था और सरकारी नीतियों के कारण कुछ लोग सरकारी पैसा, जनता के पैसे का फायदा उठा रहे हैं तो कुछ लोग उत्पादन-व्यापार के तहत अन्य लोगों को रोजगार देते हुए अपनी कमाई में ही व्यस्त-मस्त हैं। भोजन (उत्पादन 15 करोड़ टन, खपत 14 करोड़ टन लगभग) वस्त्र में स्वावलम्बी भारत वितरण (किसी भी व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण भाग (Distribution) की खामियों के कारण लोग भूखे हैं। जरूरत है इन विषयों को गहराई से समग्रता में समझकर पहल करने की।

जाति-धर्म-भाषा में विभक्त भारतीय समाज वोट के द्वारा हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था को बनाता है। आगे चलकर यह व्यवस्था केन्द्रित एवं एकाधिकार में तब्दील हो गयी है। लोकतंत्र के दो स्तम्भ विधायिका एवं कार्यपालिका इस केन्द्रित—एकाधिकार वाली व्यवस्था का संचालन नियम-कानून और पलिस के डंडे से करते हैं।

केन्द्रित एवं एकाधिकार प्राप्त व्यवस्था के संचालन के तरीके

विधायिका (एमपी/एमएलए) : विधायिका का काम है पूरी व्यवस्था पर निगरानी रखना लेकिन ये एमपी/एमएलए अपनी कार्यपालिका यानी जनता के सेवक से एमपी/एमएलए विकास मद (5 करोड़) का काम बिना टेंडर से करवाते हैं और दोनों मिलकर कमीशन खाते हैं। इस कारण सरकारी सेवक शासक बनकर मनमानी करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय इस पर संज्ञान लेने की बजाय हाथ उठाकर कह देती है कि यह हमारे अधिकार क्षेत्र से बाहर है। एमपी/एमएलए अपना वेतन-भत्ता, पेंशन खुद बढ़ा लेते हैं।

पंचायतीराज : पंचायतें फैसले अपने आधार पर करें अच्छी बात है लेकिन आज की पंचायतीराज व्यवस्था इस केन्द्रित सरकारी व्यवस्था का हिस्सा है। इन्हें बहुत सीमित अधिकार है।

अनुदान (Subsidy) : व्यवस्था से जब गरीबों को फायदा न हो तो सरकार अपने इस विशेषाधिकार से अनुदान देकर उसे लाभ पहुंचाने का काम करती है लेकिन आज घरेलू गैस सिलेण्डर जो मध्यम वर्ग इस्तेमाल कर रहा है, बैंक जो 1.5 लाख करोड़ का कर्ज डुबा देती है उसे अनुदान का फायदा दे रही है। केरोसिन जन वितरण, खाद आदि में दिया जाना वाले 80 प्रतिशत अनुदान दलाल वर्ग खा जाता है।

पेंशन : भारत के प्रत्येक व्यक्ति को रुपये 2000/- प्रतिमाह पेंशन भत्ता, खजाने का हिस्सा मिलना चाहिए लेकिन आज की केन्द्रित सरकारी व्यवस्था वृद्ध, विकलांग, विधवा आदि कुछ लोगों को रुपये 200/- से रुपये 600/- तक भीखरूपी पेंशन दे रही है। वहीं दूसरी तरफ सरकारी कर्मचारियों एमपी/एमएलए आदि को 1 हजार से 75 हजार रुपये तक पेंशन मिल रहा है। उत्पादन, व्यापार, किसान, रिक्शा वाला, ठेलावाला, सब्जी बेचने वाले, आयकर देने वालों, बिक्री कर वसूल कर जमा करने वालों को पेंशन क्यों नहीं? यही दर्शाता है कि भारतीय लोकतंत्र कुछ मुट्ठीभर लोगों के हित में है।

वेतन आयोग (Pay Commission) : हर 10 वर्ष में लगभग 5 करोड़ (केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, निगम, पेंशन आदि) सरकारी कर्मचारियों के वेतन वृद्धि करता है, इससे जो महंगाई बढ़ती है, उसका नुकसान हर वर्ग के लोगों पर पड़ता है।

महंगाई भत्ता (DA) : महंगाई बढ़ने पर हर 6 महीने में ऊपर के लोगों को महंगाई भत्ता, सरकार बढ़ा देती है। केन्द्रित व्यवस्था के इस खेल को जनता देखती है अंदर ही अंदर गुस्सा जाहिर करके चुप हो जाती है।

उत्पादन : *कोयला*—100 प्रतिशत कोल इंडिया का एकाधिकार है लागत प्रतिटन रुपये 500/- कोयला बेचती है रुपये 3000/- में। *बिजली*—70-80 प्रतिशत सरकारी उत्पादन। लाईन लोस 30 प्रतिशत। *पेट्रोलियम पदार्थ*—90 प्रतिशत एकाधिकार सरकार का 10 प्रतिशत उत्पादन करने वाले पीछे चलने पर मजबूर हैं। 75 से 80 प्रतिशत विदेशों से आता है।

जिस देश की 50 से 60 प्रतिशत पूंजी और लगभग 121 उत्पादन करने वाले उद्योग सरकार के पास हो उसे भी विकेन्द्रित करने से 25 से 50 लाख लोगों को रोजगार मिलेगा, उत्पादन बढ़ेगा, भ्रष्टाचार घटेगा, महंगाई घटेगी, जैसा कि टेलीकॉम सेक्टर में हुआ है।

सेवा : रेल 100 प्रतिशत केन्द्रित एवं एकाधिकार सरकार का है वापसी वैगन खाली चलाती है। *बस*—सरकार बस सेवा घाटे में चल रही है और निजी बस सेवा फायदे में। *बैंक*—राष्ट्रीयकरण यानी सरकारीकरण के बाद सरकारी बैंकों ने 1.5 लाख करोड़ कर्ज को डुबाये, सरकारी अनुदान पर चल रही है। वहीं निजी बैंक जबर्दस्त कमाई कर रही है।

शिक्षा : सामूहिक शिक्षा व्यवस्था का सरकारीकरण कर शिक्षा व्यवस्था को बर्बाद किया गया। इसी के परिणामस्वरूप आज की निजी शिक्षा व्यवस्था, कोचिंग व्यवस्था बड़े पैमाने पर स्थापित हो गयी है। हर तरीके की सरकारी केन्द्रित व्यवस्था को समाप्त कर इसे समाज के जिम्मे सौंपना होगा। सरकार सहयोग करेगी जैसा कि न्यायालय में कर→

गतिविधियां एवं समाचार

छतरपुर में पांच दिवसीय जैविक कृषक प्रशिक्षण सम्पन्न

मध्य प्रदेश गांधी स्मारक निधि छतरपुर द्वारा पांच दिवसीय जैविक कृषक प्रशिक्षण शिविर 24-28 जुलाई, 2016 तक आयोजित किया गया। कार्यक्रम के प्रथम सत्र में देश की भावी खाद्य सुरक्षा में समग्र सजीव खेती एकमात्र उपाय-अवरोध क्यों और कहां विषय पर संगोष्ठी आयोजित की गयी, जिसकी अध्यक्षता मध्य प्रदेश गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष दुर्गाप्रसाद आर्य ने की तथा मुख्य अतिथि के रूप में कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. एस. एल. गोस्वामी व विशिष्ट अतिथि के रूप में बनारस से आये वरिष्ठ कृषि विशेषज्ञ प्रकाश सिंह रघुवंशी व भारतेन्दु प्रकाश रहे। द्वितीय सत्र में प्रकाश सिंह रघुवंशी ने बीज चयन व बीज संरक्षण के बारे में विस्तार से बताया।

शिविर के दूसरे दिन विन्ध्य के लोक साहित्यकार व कृषक बाबूलाल दाहिया, प्रकाश सिंह रघुवंशी, अतीश गायकवाड ने धान की विविध प्रजातियों की उन्नत खेती, खासकर 70 दिन से लेकर 120 दिन तक में उत्पादन करने तथा धान से संबंधित सभी समस्याओं के बारे में बताया।

शिविर के तीसरे दिन सुबह के सत्र में ताराचन्द्र बेलजी व अतीश गायकवाड द्वारा समग्र सजीव खेती, मिश्र खेती, उपयुक्त फसल चक्र व वृक्ष खेती पर विस्तृत चर्चा की गयी। चौथे दिन सुबह के सत्र में ताराचन्द्र बेलजी ने समग्र गौशाला प्रबंधन विषय पर प्रकाश डाला।

शिविर के अंतिम दिन प्रशिक्षणार्थियों द्वारा उनकी भावी योजना पर चर्चा की गयी। समापन सत्र के मुख्य अतिथि जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्राध्यापक प्रो. बृजगोपाल ने पानी संरक्षण एवं कृषि पर चर्चा की। इस अवसर पर वरिष्ठ गांधीवादी दशरथ जैन ने कहा कि हमें प्रकृति से जुड़े रहना है, जितनी दूर हम जायेंगे समस्या उतनी जटिल होगी। **–संजय सिंह**

मंत्री, म.प्र. गांधी स्मारक निधि, छतरपुर

अवैध संचालक मंडल के हाथों में है गांधी विद्या संस्थान : महादेव विद्रोही

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने कहा है कि वाराणसी राजघाट स्थित गांधी विद्या संस्थान 9 वर्षों से सरकार की कैद में बरबाद हो रहा है।

श्री विद्रोही ने कहा है कि सरकार ने 27 जून 2007 को जो संचालक मंडल गठित किया था, उसकी मियाद केवल एक माह थी, इसे संस्था को संचालित करने के उपायों पर विचार करने के लिए गठित किया गया था, लेकिन मियाद पूरी होने के बाद भी यह संचालक मंडल अपनी मनमानी करता रहा और संस्थान को संचालित करने की बात तो दूर इसने सोसायटी रजिस्ट्रेशन के तहत संस्था का पंजीकरण करा लिया। यहां कार्यरत कर्मचारियों की मनमाने ढंग से सेवाएं भी समाप्त कर दीं। वाराणसी के तत्कालीन कमिश्नर चंचल कुमार तिवारी ने अपने 4 जून 2013 की जांच रिपोर्ट में कहा था कि जो संचालक मंडल गठित किया गया था वह अपना अस्तित्व खो चुका है। उन्होंने यह भी कहा कि अब संस्थान में मनमाने ढंग से गठित एक संचालक मंडल क्रियाशील है, जो बिलकुल अवैध है। अस्तु उन्होंने नया संचालक मंडल बनाने की सिफारिश की थी, जो तब से उच्च शिक्षा विभाग में लागू किये बिना दबी पड़ी है।

27 अगस्त, 2016 को लखनऊ में गांधीवादियों द्वारा किये गये सत्याग्रह का हवाला देते हुए श्री विद्रोही ने आश्चर्य व्यक्त किया है, इसके बावजूद सरकार कोई ठोस कार्रवाई न कर बिलकुल मौन साध ली है, जो अत्यन्त दुखद है।

पंकज की गिरफ्तारी

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने चम्पारण में भूमिहीनों के हित के लिए किये जा रहे सत्याग्रह में शामिल पंकज व उनके साथियों की गिरफ्तारी पर दुःख व्यक्त करते हुए कहा है कि यह गिरफ्तारी शांतिपूर्ण संघर्ष के विरुद्ध प्रशासन का एक षड्यंत्र है।

श्री विद्रोही ने बताया कि श्री पंकज छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के प्रमुख कार्यकर्ता रहे हैं और उनका शांतिमयता में पूरा विश्वास रहा है। खेदजनक है कि प्रशासन ने उनपर हत्या करने के प्रयास का आरोप लगाकर उन्हें गिरफ्तार किया है, जो विश्वास के योग्य नहीं है।

श्री विद्रोही ने बिहार सरकार से अपील की है कि पंकज पर लगाये गये झूठे आरोप से उन्हें मुक्त करते हुए अविलम्ब जेल से रिहा किया जाय, जिससे कि शांतिमय संघर्ष समाजिक परिवर्तन के लिए जारी रह सके।

→रही है। *चिकित्सा*—बहुत कठिन विषय है इसमें भी सरकार को सहयोगी होना चाहिए।

सिर्फ मन में विकेन्द्रित व्यवस्था का जाप करने से कुछ नहीं होगा अमेरिका ने विकेन्द्रित व्यवस्था को अपने यहां स्थापित किया तो वह इतना समृद्ध हो गया कि वह दुनिया का दादा बन गया, चीन ने सिर्फ उत्पादन, जापान, जर्मनी, दक्षिण कोरिया, सिंगापुर आदि देश ने दुनिया में समृद्धि हासिल की। वहीं दूसरी तरफ केन्द्रीय व्यवस्था वाला देश रूस 14 भागों में टूट गया, दुनिया में स्थापित होना तो दूर की बात है अपने आधार पर कर्ज के बिना जीने के लिए सिर्फ विकेन्द्रीकरण जरूरी है। बातें आम हैं हमें इसे खास करना होगा। ❑

नरदेह

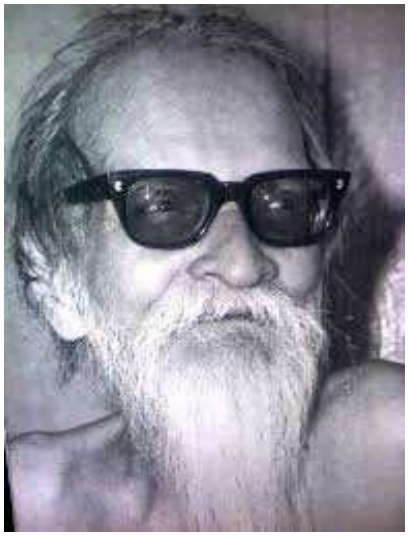

❑ विनोबा

नरदेह एक अनमोल रत्न है।
मानो वह ब्रह्म-बीज ही है।
उसमें आत्मज्ञान की शक्यता है,
जो सब प्रकार से निर्भय है।
और उसे सिद्ध करने में ही मनुष्य का चातुर्य है।

नरदेह से प्राणीमात्र की प्रेमपूर्वक सेवा हो सकती है।
दर्शन चाहिए, तीर्थों के तीर्थरूप आत्माराम का,
जो हृदय-मंदिर में छिपकर बैठा है।
उसके लिए एक ही उपाय है,
हृदय-शुद्धि और निकटवर्ती जीवसृष्टि की सेवा।

हरि सर्वव्यापक और सब शरीरों में विराजमान है।
लेकिन, यह मनुष्य के ध्यान में नहीं आता।
और वह अकेले अपने ही शरीर में उलझा रहता है।
फिर परमार्थ उसे कड़ुवा लगता है,
और स्वार्थ मीठा लगता है।
इस तरह परस्पर-विरोधी स्वार्थों में झगड़ा शुरू होता है।
संसार कठिन हो जाता है।

इसीलिए ईश्वर-भावना से भूतमात्र की सेवा,
ऐसा दूसरा मुक्ति का साधन नहीं।
एक-दूसरे के वास्तविक हित
एक-दूसरे से विरुद्ध रहते ही नहीं।
यह निज-ज्ञान उसकी नींव है।
उससे मुक्ति का मार्ग सहज ही मुक्त होने वाला है।
फिर संकुचित अहंता लुप्त होगी,
परस्पर सद्भाव जाग्रत होगा,
सर्वत्र सुख उमड़ पड़ेगा।
'सृष्टि और संसार सब सुखमय करूंगा,'
यह मेरी प्रतिज्ञा है।
सर्वत्र सुख-साम्य की योजना किये बिना
'हरि की समाधि' नहीं मिलेगी।
भेदभाव का निर्दलन करके,
सुख-साम्य संपादन करने में ही
बुद्धि की सार्थकता है।

ईश्वर के बारे में
मेरा मन जरा भी डँवाडोल नहीं रह गया है।
कारण, अपने देह में
मैं उसे प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा हूँ।
अब चाह इतनी ही है
कि भविष्य में सब की सारी इन्द्रियों से
मैं उसे अनुभव करूँ।
आंतरिक आत्माराम का दर्शन होगा,
तो बाहर हरिस्वरूप भरा हुआ दिखाई देगा।

सबके हृदयों की आर्तता, सबका दुःख,
मेरे हृदय में प्रकट होता है।
यह सारा विश्व मेरा ही शरीर है,
और फिर वह भी ब्रह्ममय है,
ऐसा मैं अनुभव करता हूँ।

अब दुनिया भर में निवृत्ति का धर्म जागे,
और सर्वत्र हरिनाम का उत्साह रहे।

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार / कार्यकारी संपादक : अशोक मोती।